१८५७ की दो वीरांगनाएं

अमृतलाल नागर

रानी लक्ष्मीबाई



बेगम हज़रतमहल



उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ

BVP→ 19 25
8|2|18

19/66

१८५७ की दो वीरांगनाएँ

रानी लक्ष्मीबाई और बेगम हज़रतमहल

ग्रन्थमाला संख्या : ०२

१८५७ की दो वीरांगनाएँ

रानी लक्ष्मीबाई और बेगम हज़रतमहल

अमृतलाल नागर

संकलन एवं सम्पादन

डॉ. शरद नागर

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान

राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन हिन्दी भवन

६, महात्मा गांधी मार्ग, हज़रतगंज, लखनऊ

प्रकाशक
डॉ. सुधाकर अदीब
निदेशक
उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान
लखनऊ

प्राचीन एवं दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशन की योजना के अन्तर्गत प्रकाशित।

प्रथम संस्करण : २००७
द्वितीय संस्करण : २०१४

प्रतियाँ : ५००

मूल्य : ₹ ४०=०० (चालीस मात्र)

ISBN : 978-93-82175-38-4

मुद्रक
रोहिताश्व प्रिण्टर्स
२६८, ऐशबाग रोड, लखनऊ
फोन : ०५२२–२६६२६७३

निवेदन

आधुनिक भारतीय इतिहास में १८५७ का पहला स्वातंत्र्य संग्राम एक ऐसी घटना है, जो हमारी विभिन्न धर्मों व जातियों के बीच एकता, स्वतंत्रता के लिए संकल्पबद्धता और विकास से जुड़ी समर्पण-भावना के सन्दर्भ में किसी परिचय की अपेक्षा नहीं रख़ता। जिस तरह से इसमें हिन्दुस्तानी सैनिकों के अलावा समाज के विभिन्न वर्गों, स्त्री-पुरुषों और अमीर-गरीब सभी ने बढ़-चढ़ कर हाथ बँटाया, त्याग किया, बलिदान दिये – वह अन्यत्र दुर्लभ है। तत्कालीन विघटित समाज को इस जनक्रान्ति ने जिस तरह एकता के सूत्र में पिरोया – वह आज भी एक जीवंत आदर्श है। विश्व इतिहास में अपनी तरह के अकेले इस जन-जागरण का नेतृत्व जिन रणबाँकुरों ने किया, उनमें रानी लक्ष्मीबाई व बेगम हज़रत महल के बलिदान और उनकी यश गाथा से हम सभी परिचित हैं। 'बुन्देले हर बोलो के मुँह हमने सुनी कहानी थी, खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी' जैसी चर्चित कविताओं में संरक्षित यह बलिदान गाथा आज भी वर्तमान और आगत पीढ़ी को प्रेरित करती है। इसी तरह बेगम हज़रत महल ने जिस तरह छोटे-छोटे राजाओं व सरदारों के घर-घर जाकर उनका सहयोग माँगा, प्रथम स्वतंत्रता संग्राम को संगठित किया और लम्बे समय तक अंग्रेजों को शिकस्त देती रहीं – वह भी भारतीय इतिहास का अप्रतिम अध्याय है।

जिन प्रमुख विद्वानों व रचनाकारों ने १८५७ के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम सम्बन्धी विभिन्न तथ्यों को गहरे खंगाला, उनमें वरिष्ठ रचनाकार अमृतलाल नागर का नाम बहुत आदर से लिया जाता है। वह प्रथम स्वतंत्रता संग्राम पर एक विस्तृत उपन्यास भी लिखना चाहते थे और इस सन्दर्भ में प्रदेश

के विभिन्न अंचलों में जाकर सम्बन्धित संस्मरणों, तथ्यों व लोक साहित्य आदि का संकलन किया था। विभिन्न कारणों से यह उपन्यास तो वह न लिख सके, पर 'गदर के फूल' पुस्तक लिखकर इस दुर्लभ सामग्री का सदुपयोग अवश्य किया। इसमें १८५७ की जनक्रान्ति के अनेक वीरों विशेषकर बेगम हज़रत महल के बारे में दुर्लभ सामग्री मिलती है। इसी क्रम में नागर जी ने एक मराठी रचना 'माझा प्रवास' का भी अनुवाद किया जो पुरोहित विष्णु भट्ट गोडसे ने उस समय आँखों देखे विवरण के रूप में लिखी थी, जब वह १८५७ में मथुरा जा रहे थे। प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के कारण उन्हें काफी समय तक झाँसी में प्रवास करना पड़ा था। इस पुस्तक में उन्होंने रानी लक्ष्मीबाई के शौर्य और प्रेरक जीवन पर अत्यन्त भावपूर्ण प्रकाश डाला है। स्वयं नागर जी के शब्दों में १८५७ की जनक्रान्ति से सम्बन्धित हर दृश्य व घटना का विवरण इस पुस्तक में बहुत ही सजीव और मार्मिक है। उन्होंने 'आँखों देखा गदर' शीर्षक से इसका अनुवाद १९४६ में प्रकाशित कराया था।

किसी भी राष्ट्र के गौरवपूर्ण इतिहास और विकासक्रम में अन्य क्षेत्रों के अतिरिक्त प्रायः कुछ महत्वपूर्ण घटनाएँ और उनसे जुड़े असाधारण व्यक्तित्व भी प्रेरक रूप में सामने आते हैं। इनसे राष्ट्र और समाज-विशेष की ऊँचाइयों का संकेत मिलता है और वे बिना कुछ कहे बहुत कुछ कह जाते हैं। इस संदर्भ में कृतज्ञ राष्ट्र ने कुछ वर्ष पहले १८५७ के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की १५०वीं वर्षगांठ मनायी थी। उस समय हमारे अनुरोध पर अमृतलाल नागर की इन दोनों विशिष्ट रचनाओं को उनके सुयोग्य पुत्र डॉ. शरद नागर ने नये सिरे से देखा-परखा था और इस जनक्रान्ति की दोनों महान वीरांगनाओं से सम्बन्धित सामग्री पर आधारित इस पुस्तक की पाण्डुलिपि तैयार की थी। यह एक श्रमसाध्य कार्य था, जिसे उन्होंने सफलतापूर्वक पूरा किया और यह पुस्तक मूर्त रूप ले सकी थी। विश्वास है, कि अब '१८५७ की दो वीरांगनाएँ' रानी लक्ष्मीबाई और बेगम हज़रत महल पुस्तक के इस द्वितीय संस्करण का भी पूर्ववत् स्वागत होगा और उसी सम्मान और आत्मीयता के साथ अपनाया जायेगा, जिस प्रकार इन दोनों महान वीरांगनाओं की पुण्य-स्मृति को हमारे लोक जीवन ने हमेशा सुरक्षित रखा है।

उदय प्रताप सिंह
कार्यकारी अध्यक्ष

प्रकाशकीय

किसी भी महान देश और उसकी संस्कृति में सर्वाधिक योगदान त्याग और बलिदानों का होता है। १८५७ के पहले स्वतंत्रता संग्राम में जिन वीरों ने अंग्रेजों के विरुद्ध जनता के सभी वर्गों को अनेक कष्टों के बीच संगठित किया और हमारे महान देश की यशस्वी पहचान को नयी ऊँचाइयाँ दीं, उनमें रानी लक्ष्मीबाई और बेगम हजरत महल का नाम बहुत आदर से लिया जाता है। राज महलों की अनेक सुख-सुविधाएँ छोड़ इन दोनों वीरांगनाओं ने जिस तरह देश के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम का नेतृत्व किया, वह इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित है। इन दोनों वीरांगनाओं सहित अन्य क्रान्तिकारियों की प्रेरणाप्रद भूमिका और अपने तरह की इस अनूठी जनक्रान्ति के विभिन्न पहलुओं पर अनेक रचनाएँ व पुस्तकें समय-समय पर प्रकाशित होती रही हैं। अनेक वरिष्ठ रचनाकारों व इतिहासकारों की शोध सक्रियता से प्रमाणित हो चुका है कि यह मात्र सैनिक विद्रोह नहीं, अंग्रेजों के विरुद्ध जन-युद्ध था। स्वतंत्रता के लिए समर्पित ऐसी मशाल थी, जिसे जनता के विभिन्न वर्गों ने प्रज्वलित रखा था।

भारतीय साहित्यकारों पर भी इस प्रथम स्वतंत्रता संग्राम का व्यापक प्रभाव पड़ा। विशेषकर वरिष्ठ साहित्यकार अमृतलाल नागर ने तो इससे सम्बन्धित तथ्यों और लोक साहित्य के संकलन के लिए गाँवों-कस्बों की दूर-दूर तक यात्राएँ भी कीं। उनकी यह साधना 'गदर के फूल' पुस्तक के रूप में हमारे सामने आयी। उन्होंने एक मराठी रचना 'माझा प्रवास' का

अनुवाद भी हिन्दी में 'आँखों देखा गदर' के रूप में किया। इन दोनों ही पुस्तकों में १८५७ के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के विभिन्न पक्षों पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। विशेष रूप से इनमें रानी लक्ष्मीबाई और बेगम हजरत महल पर जो प्रामाणिक जानकारी मिलती है, वह दुर्लभ और अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

देश कुछ वर्ष पहले १८५७ के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की १५०वीं वर्षगांठ मना चुका है। वरिष्ठ संस्कृतिकर्मी और नागर जी के सुयोग्य पुत्र डॉ. शरद नागर ने उस समय हमारे अनुरोध पर 'गदर के फूल' और 'आँखों देखा गदर' पुस्तकों से इस जनक्रान्ति की दो महान वीरांगनाओं रानी लक्ष्मीबाई और बेगम हजरत महल पर महत्वपूर्ण सामग्री संजोकर पुस्तकाकार रूप में प्रस्तुत किया जो '१८५७ की दो वीरांगनाएँ' रानी लक्ष्मीबाई तथा बेगम हज़रतमहल के व्यक्तित्व एवं कृतित्व रूप में प्रकाशित हुई। जनमानस में यह पुस्तक अत्यन्त सराही गयी। इसी सन्दर्भ में अब उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान इस महत्वपूर्ण कृति के द्वितीय संस्करण का प्रकाशन अपनी प्राचीन एवं दुर्लभ ग्रन्थ प्रकाशन योजना के अन्तर्गत करते हुए अत्यन्त गौरवान्वित है। आशा है, १८५७ के क्रांतिवीरों से लेकर लोक मानस के बीच इन दोनों वीरांगनाओं ने जो यशस्वी छाप छोड़ी है, उनसे सम्बन्धित संग्रहीत विभिन्न तथ्य इस संस्करण की भी उपादेयता अक्षुण्ण रखेंगे और शोधार्थियों से लेकर सामान्य पाठकों के बीच इस असाधारण कृति का यथोचित स्वागत होगा।

डॉ. सुधाकर अदीब
निदेशक

सम्पादकीय

सन् १६४०–'४७ के काल में अमृतलाल नागर जी मुम्बई, कोल्हापुर तथा चेन्नई के फिल्म उद्योग से जुड़े रहे और उन्होंने विख्यात पटकथा एवं संवाद लेखक के साथ ही रूसी एवं तमिल भाषा की फ़िल्मों की हिन्दी में डबिंग करके सफल डबिंगकार कें रूप में ख्याति अर्जित की। मराठी एवं तमिल भाषा पर सतत अभ्यास करके अधिकार प्राप्त करना; उस काल में नागरजी की अन्य महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ रहीं। बंगाली और गुजराती पर उन्हें पूर्ण अधिकार पहले ही प्राप्त था।

सन् १६४५–'४६ के दौरान मराठी के प्रसिद्ध लेखक शामराव नीलकण्ठ ओक ने नागरजी को विष्णुभट्ट गोड्शे द्वारा लगभग एक शताब्दी पूर्व की गयी मध्य–भारत तथा उत्तर–भारत की यात्रा का वृत्तांत 'माझा प्रवास' लखनूर (लखनऊ) का वर्णन पढ़ने के लिए दिया था। नागरजी विष्णुभट्ट गोड्शे की इस अद्‌भुत कृति 'माझा प्रवास' को एक साँस में पढ़ कर अभिभूत हो उठे।

दरअसल, कर्मकाण्डी शास्त्री विष्णुभट्ट गोड्शे अपने काका–शास्त्री रामभट्ट के साथ मूलतः सन् १८५७ में ग्वालियर की महारानी वायजाबाई शिन्दे द्वारा मथुरा में सम्पन्न किये जाने वाले सर्वतोमुखी–यज्ञ में द्रव्यार्जन के उद्देश्य से भाग लेने कें लिये निकले थे किन्तु; दुर्भाग्यवश इस यात्रा के दौरान ही ग़दर आरम्भ हो गया, जिसके कारण ग़दर का प्रत्यक्ष दृष्टा बनने के साथ ही इन्हें बहुत कष्ट भी झेलने पड़े। यों तो इस यात्रा के दौरान इन्होंने ग़दर में जो कुछ देखा, उसका चित्रात्मक एवं मार्मिक वर्णन किया है किन्तु; लगता है झाँसी में ये काफ़ी समय के लिए फँसे रहे। अतः इन्हें

गदर–पूर्व झाँसी का वैभव एवं गदर के दौरान झाँसी का विनाश और पतन तो देखने को मिला ही, इनको झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई की दिनचर्या के साथ ही उनके राजकाज और शौर्य के प्रत्यक्ष दर्शन करने और उनके बाल्यकाल से मृत्युपर्यन्त का पूरा इतिवृत्त जानने–सुनने का भी अवसर मिला।

नागरजी के शब्दों में "....'माझा प्रवास' का भिक्षुक लेखक अपने विषय और क्षेत्र में किसी भी प्रतिष्ठित इतिहासकार और साहित्यकार से कम नहीं। इतिहास की अमूल्य सामग्री और अपने प्रत्यक्ष अनुभव को इतनी कुशलता के साथ लिपिबद्ध करने की क्षमता रखने के कारण, एक लेखक के नाते गोड्शे शास्त्री का महत्व भी गदर के इतिहास की तरह स्थायी है।"

एक अन्य स्थान पर नागरजी लिखते हैं "....'पुस्तक चित्रपट की भाँति एक सूत्र में बँधी हुई आगे बढ़ती है।' हर दृश्य, हर घटना का वर्णन बड़ा ही सजीव और मार्मिक है। लक्ष्मीबाई के शौर्य, झाँसी की लड़ाई और ग़दर का इतना सुन्दर वर्णन शायद ही कहीं पढ़ने को मिले।"

'माझा प्रवास' का हिन्दी रूपान्तरण नागरजी ने १९४६–४७ में किया था। 'आँखों देखा गदर' शीर्षक से इसका प्रकाशन १९४९ में हुआ। विगत लगभग छः दशकों में इसके प्रायः आधा दर्जन से अधिक संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।

प्रस्तुत संकलन में 'रानी लक्ष्मीबाई' का आलेख 'आँखों देखा गदर' के पाँच परिच्छेदों में से संपादित करके लिया गया है। नागरजी के रूपान्तर की भाषा से कोई छेड़छाड़ नहीं की गयी है। अनुवाद की भाषा के सम्बन्ध में नागरजी लिखते हैं : "....मूल पुस्तक की भाषा बड़ी सरल और लच्छेदार है। लेखक की रचना को यथासम्भव ज्यों का त्यों हिन्दी में उतार देने के लिए मैंने अनुवाद की भाषा में मराठीपन का रंग मिलाना आवश्यक समझा। दूसरी भाषाओं के बहुत से मुहावरे हिन्दी सहज ही में अपना सकती है। इससे राष्ट्र–भाषा समृद्ध होगी।"

कदाचित इस पुस्तक ने ही नागरजी को १८५७ के गदर, विशेष रूप से अवध के गदर की पृष्ठभूमि को लेकर एक वृहत् उपन्यास लिखने के लिए प्रेरित किया। अपने किसी उपन्यास लेखन के पूर्व उसकी विषय–वस्तु

से सम्बन्धित स्थानों का गहन सर्वेक्षण करने के लिए भ्रमण करना, वहाँ के लोगों से बोल–बतिया कर किस्से बटोरना, उनकी बोली–बानी को पकड़ना और विभिन्न ग्रंथों का अध्ययन करके विशद नोट्स बनाना; नागरजी की रचना–प्रक्रिया के प्रमुख अंग थे। इसी प्रक्रिया के तहत उन्होंने अवध के प्रायः सभी जनपदों के गाँव–जवारों की सघन–तूफानी यात्रा करके गदर से सम्बन्धित जनश्रुतियों एवं लोक साहित्य, जंगनामा आदि का संग्रह किया। उपन्यास का ताना–बाना उन्होंने अंग्रेज और अंग्रेजीपरस्त नवाब नसीरुद्दीन हैदर के काल से बुनना आरम्भ किया था; जिसे आगे नवाब वाजिदअली शाह की माजूली और ग़दर तक विकसित होना था। नवाब नसीरुद्दीन हैदर का किस्सा तो अपने उपन्यास 'शतरंज के मोहरे' में उन्होंने प्रस्तुत कर दिया; किन्तु अन्य जितनी भी सामग्री बटोरी थी, उसका उपयोग अगले उपन्यास के रूप में वे न कर सके। अलबत्ता; अवध की माटी से बटोरी दुर्लभ – सामग्री को संजो कर उन्होंने 'गदर के फूल' शीर्षक एक अनुपम कृति अवश्य दी, जिसका प्रथम प्रकाशन उत्तर प्रदेश शासन के सूचना विभाग ने १८५७ के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की शताब्दी के उपलक्ष्य में सन् १९५७ में किया।

'गदर के फूल' में यूँ तो अनेक वीरों, वीरांगनाओं तथा अवध के सामान्यजन की शौर्य–गाथाओं के फूल चुने गये हैं किन्तु; अंग्रेजों के द्वारा अपदस्थ किये गये नवाब वाजिदअली शाह की बेगम हजरतमहल ही अवध के गदर की प्रमुख नायिका के रूप में उभर कर आयी हैं। बेगम हजरतमहल को नागरजी उसके बादशाह पति से बेहतर 'मर्द' मानते थे। १९६६ में नागरजी ने 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' के तत्कालीन सम्पादक मनोहर श्याम जोशी की माँग पर 'गदर के फूल' की सामग्री के आधार पर एक लम्बा आलेख 'वह अपने बादशाह पति से बेहतर मर्द थी' लिखा था, जो 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' के १७ तथा २४ अगस्त १९६६ के अंकों में प्रकाशित हुआ था। इस पुस्तक में उक्त आलेख को सम्मिलित किया गया है।

'गदर के फूल' में नागरजी ने झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई और बेगम हज़रतमहल के चरित्रों का संक्षिप्त व तुलनात्मक–विवेचन किया है। उक्त विवेचन को इस पुस्तक में नागरजी के प्राक्कथन के रूप में देना मुझे जरूरी लगा, अतः उसे दोनों वीरांगनाओं के जीवन–वृत्त के पूर्व दिया जा रहा है।

विश्वास है भारत के स्वातंत्र्य–संग्राम के प्रथम जनांदोलन–१८५७ के गदर की १५०वीं वर्षगाँठ के अवसर पर पाठकों को यह पुस्तक रोचक शैली में सारगर्भित जानकारी प्रदान करने में सहायक होगी।

'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में प्रकाशित पूर्वोक्त लेख की फोटो प्रति एच. टी. मीडिया, दिल्ली के अभिलेखागार से श्री अनिल कुमार के प्रयास से ही उपलब्ध हो सकी; रानी लक्ष्मीबाई का आलेख सम्पादित करने में धर्मपत्नी विभाजी ने तथा पुस्तक की प्रेस कॉपी तैयार करने में श्री बंधु कुशावर्ती ने सहयोग प्रदान किया; पांडुलिपि का कम्प्यूटर–टंकण श्री नरेन्द्र कुमार ने किया है; कम्प्यूटर–टंकण आदि की सुविधा 'संचित स्मृति' (न्यास), लखनऊ द्वारा स्थापित अमृतलाल नागर साहित्य केन्द्र ने प्रदान की; इन सभी के प्रति आभारी हूँ।

प्रेमचंद जयन्ती, ३१ जुलाई, २००६ — **शरद नागर**
अमृत प्रतिभा,
५/५३० विकास नगर,
लखनऊ–२२६०२२

प्राक्कथन

लखनऊ और अवध के सत्तावनी क्रान्ति सम्बन्धी इतिहास में एक नया चरित्र आकर जुड़ा, और फिर क्रान्ति के अन्त तक उस पर ऐसा छाया रहा कि अवध में क्रान्ति का इतिहास ही उसका इतिहास हो गया। बेगम हज़रतमहल का व्यक्तित्व भारत के नारी समाज या कहें कि उस समय के प्रायः आधे जगत् के सामन्ती मान्यताओं से बँधे नारी–समाज का प्रतिनिधित्व करता है। महारानी लक्ष्मीबाई के व्यक्तित्व को भी यदि इसके साथ–ही–साथ ध्यान में रख कर सतर्क दृष्टि से देखा जाय तो हमारे नारी–जीवन का संपूर्ण चित्र सामने आ जाता है।

लक्ष्मीबाई का बचपन संयोगवश पिता के निर्धन होते हुए भी अभाव रहित रहा। बाजीराव पेशवा के परिवार में वह मातृहीना कन्या लाड़ से पली, संस्कार बड़े शुद्ध पाये। मातृहीना, चपल, कुशाग्र बुद्धि और तेजस्विनी बालिका को पेशवा के सैनिकों और नाना धोंडूपन्त, बालाजी आदि के शस्त्र–शास्त्र गुरु का अपार स्नेह भी मिला। मणिकर्णिका बाई उर्फ़ मनु उर्फ छबीली की शिक्षा–दीक्षा समुचित रूप से हुई। उसके पिता मोरोपन्त ताम्बे बिठूर में श्रीमन्त पेशवा की होमशाला के एक भिक्षुक ब्राह्मण थे, किन्तु सौभाग्य ने मनु को रानी बनाया। रानी होते ही––पत्नी होते ही–मनु के मुक्त, पुरुषोचित जीवन को उन समस्त बंधनों का अनुभव हुआ, जिसे हमारा स्त्री–समाज आज तक भोगता है। झाँसी के माण्डलिक राजा बाबा गंगाधर राव बड़े क्रोधी स्वभाव के थे। उन्होंने अपनी बाल पत्नी को कठोर अनुशासन में रक्खा। लक्ष्मीबाई ने उतने ही बन्धन को बहुत माना। लक्ष्मीबाई पति की अकेली पत्नी थीं; सौभाग्यवश उन्हें सौतों के कुचक्रपूर्ण

वातावरण में नहीं घुटना पड़ा। पति की मृत्यु के बाद वे पूर्णरूप से स्वतंत्र हो गयीं और उस स्वतंत्रता का उपयोग उन्होंने अपने वैधव्य को कठिन अनुशासन से सँवारने में किया। कसरत, घुड़सवारी आदि से अपने शरीर को बनाने के नशे के कारण वे भोग–विलास से सहज ही में बची रह सकीं। लक्ष्मीबाई यदि बाईस वर्ष की आयु में इस प्रकार काल–कवलित न होकर पूरी आयु पातीं, तब भी मेरा जहाँ तक विचार है, वे चरित्र से अन्त तक निष्कलंक ही रहतीं। यह बात और है कि वे शायद कुछ झक्की और कठोर हो जातीं। लक्ष्मीबाई के आश्रय में रहने वाले तथा उनके द्वारा मान्य एक वेदशास्त्र सम्पन्न ब्राह्मण विष्णुभट्ट गोडशे ने अपनी पुस्तक 'माझा प्रवास' में महारानी लक्ष्मीबाई की जो दिनचर्या दी है, उससे ही मेरी इस धारणा को पुष्टि मिली है।

लक्ष्मीबाई सतीत्व के तेज से संयुक्त थीं। वे देवी सीता की परम्परा की थीं, जिन्होंने समाज द्वारा स्त्री–जाति पर लादे गये अनुशासन को आस्थापूर्वक धर्म समझ कर धारण किया; परन्तु साथ ही साथ समाज के एकांगी न्याय का विरोध भी किया। लक्ष्मीबाई, बाबा गंगाधर राव के कठोर अनुशासन से बँध कर भी उनसे दबी नहीं थीं। यह सद्–विद्रोह उनके चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता बन जाता है——ठीक उसी प्रकार जैसे सीता का चरित्र राम की राजसूय सभा में स्वाभिमान रक्षा के हित अपनी जीवनाहुति देकर अपना पूर्ण विकास पाता है।

बेगम हजरतमहल का चरित्र नारी के सहज स्वाभिमान और तेज का दूसरा पहलू पेश करता है। हज़रतमहल को बचपन में ही समाज की उस परम्परा में बँध कर अपने जीवन का विकास मिला, जिस परम्परा में स्त्री पुरुष की भोगांगना बनने के लिये ही तैयार की जाती है। हज़रत महल के बचपन का कोई इतिहास नहीं मिलता। वाजिदअली शाह ने अपनी प्रेम–पात्रियों का विवरण अपनी पुस्तक 'परीखाना' में लिखते हुए इन्हें 'जनेख़ानगी' लिखा है। उस समय की मशहूर कुटनियों, अम्मन और अमामन के द्वारा यह बालिका वाजिदअली के परीखाने के वास्ते बेची गयी थी। इसे बचपन में नाच–गाने की शिक्षा मिली, पुरुष को रिझाने योग्य कलाओं में यह दीक्षित की गयीं। शाहे अवध अमजदअली शाह के दूसरे

कुँवर वाजिदअली ने अपनी नयी परी का नाम महकपरी रक्खा। बेगम हज़रतमहल के प्रपौत्र श्री सज्जाद अली मिर्ज़ा कौकब क़दर ने मुझे बतलाया था कि उनके घर में बेगम हज़रतमहल के बचपन से संबंधित कोई रवायत प्रचलित नहीं। उन्होंने भी अपनी पड़दादी के सम्बन्ध में दो बातें पढ़ी थीं : एक तो नजमुलग़नी का यह वक्तव्य कि बेगम हज़रत महल का असली नाम 'उमराव जान अदा' था, जो ग़लत है। उर्दू साहित्य में प्रसिद्ध उमराव जान अदा और बेगम हजरत महल का कोई साम्य नहीं। बेगम छोटी उम्र में ही मकहपरी के रूप में वाजिदअली शाह के हरम में दाखिल हुई थीं। शीघ्र ही वे माता भी हो गयीं। मिर्ज़ा रमज़ान अली खां अल–मुलक़्क़ब मिर्ज़ा बिरज़ीसक़दर हज़रत महल के गर्भ से मिर्ज़ा वाजिदअली की चौथी सन्तान थे।

मिर्ज़ा कौक़बक़दर ने दूसरी बात यह सुनी थी कि ये फ़ैजाबाद के किसी निर्धन परिवार की कन्या थीं। बहुत सुन्दरी होने के कारण धन के लोभवश इनके माता–पिता ने शाही भोग के वास्ते इन्हें अम्मन और अमामन के द्वारा महलों में दाख़िल करा दिया।

जो हो, ये अम्मन और अमामन के हाथों अपने धन के लोभी माता–पिता के द्वारा बेची गयी हों, या उनके द्वारा कहीं से उड़ा कर महलों में पहुँचायी गयी हों, हर हालत में यह एक ऐसी परिस्थिति है, जिसे स्वाभिमानिनी बालिका ने अपनी अनिच्छा से स्वीकार किया होगा। स्त्री के अन्तर का यह सुप्त–विद्रोह ही मातृत्व की शक्ति लेकर अपने बेटे का राज्य बचाने के लिये इस प्रकार विकसित हुआ कि राष्ट्रीयता का भाव सिद्ध कर सदा के लिये अनुकरणीय आदर्श बन गया। सर विलियम रसल बेगम की प्रशंसा करते हुए लिखता है : "बेगम में बड़ी योग्यता और तेजस्विता दिखलायी देती है।...बेगम ने हमारे साथ अनवरत युद्ध की घोषणा कर दी है। इन रानियों और बेगमों के स्फूर्तिवन्त शक्तिशाली चरित्रों को देख कर लगता है कि जनानख़ानों और हरमों में रह कर भी वे अपने अन्दर तीव्र क्रियात्मक मानसिक–शक्ति पैदा कर लेती हैं।" ईनिस, बाल, मेलिसन, के. होप ग्रांट, गबिन्स—–जिसने भी अवध के सम्बन्ध में कुछ लिखा है उसने कम से कम बेगम की चतुराई, बुद्धिमत्ता और संगठन–शक्ति की प्रशंसा किसी न किसी रूप में अवश्य की है।

जब भूतपूर्व बादशाह के किसी पुत्र को राजगद्दी पर बिठलाने की बात आयी, तो पहले किसी का ध्यान बिरजीसक़दर की ओर न गया। यदि और किसी शाहज़ादे अथवा उसकी उच्च कुल की माँ ने वाज़िदअली शाह की गद्दी से राजनैतिक सम्बन्ध जोड़ना स्वीकार कर लिया होता तो इतिहास के सम्मुख बेगम हज़रत महल का चरित्र शायद कभी न आया होता।

– अमृतलाल नागर



रानी लक्ष्मीबाई

खेलना–कूदना, होमशाला अथवा श्रीमन्त नानासाहब के साथ ही होता था। छबीली को बचपन से ही पुरुषों के खेल खेलने की आदत पड़ गयी थी और धीरे–धीरे उसमें पुरुषोचित गुण भी अधिक पनपने लगे। किसी ने उसे मोड़ी (मुड़िया) बाल बोध लिखना–पढ़ना सिखाया, किसी ने घुड़सवारी सिखायी, किसी ने तीर चलाने में होशियार कर दिया। कोई उसे हाथी पर सवार करके घुमा लाता तथा कोई बंदूक चलाना सिखाता और कोई तलवार के पैंतरे सिखाता था – इस तरह वह बड़े राजसी–ठाट और सुख में पली। वह लड़की ग्यारह–बारह वर्ष की; पहाड़–सी दीखने लगी। यह देख कर मोरोपन्त ताम्बे ने अपनी कन्या के लिये योग्य वर के लिये बड़ी खोज की। ब्रह्मावर्त में मराठों के घर बहुत कम थे, अतः उन्होंने विभिन्न स्थानों में भी बड़ा यत्न किया परन्तु; भविष्य तो छबीली को रानी के रूप में देख रहा था, इसलिए कहीं लग्न जमी ही नहीं। मोरोपन्त प्रयत्न करते–करते हार गये, चिन्ता के कारण उन्हें रात में नींद भी नहीं आती थी। झाँसी वालों के कारकुन ने आकर मोरोपन्त से जब कन्यादान की याचना की तो उसे बड़ा ही आनन्द हुआ। गोत्र–गुण आदि का विचार हो जाने पर शुभ मुहूर्त में विवाह सम्पन्न हुआ और वधू का नाम लक्ष्मीबाई रखा गया।

विवाह हो जाने पर लक्ष्मीबाई सुखी न हुई। पति बड़े कड़े स्वभाव का था और उसका शासन भी बड़ा कठोर था। लक्ष्मीबाई को जरा भी स्वतंत्रता नहीं दी गयी थी। महल के बाहर निकलने की बात तो दूर, महल के अंदर भी बाई साहब अधिकतर ताले–पहरे में रहती थीं। सशस्त्र स्त्रियाँ हर समय पहरा दिया करती थीं। पुरुषों की तो वहाँ हवा भी न पहुँचने पाती थीं। ऐसे जुलुम–जोर होने के कारण छुटपन में सीखे हुए उसके चमत्कारी गुण तो छूटने ही लगे थे; कुछ दुर्गुण भी आने लगे थे। दैव को कदाचित् कुछ और ही मंजूर था; विवाह होने के बाद गंगाधर बाबा अधिक दिनों तक जी न सके। नवज्वर आने से उनका देहान्त हो गया। उनके कोई पुत्र न था, इसलिए मरते समय उन्होंने रेजीडेंट को बुला कर उनसे विनयपूर्वक कहा कि मेरे संगों में से किसी एक छोटे से चतुर बालक

को गोद लेने की आज्ञा मेरी पत्नी को अवश्य दी जाय। रेजीडेन्ट गार्डन साहब गंगाधर बाबा को बहुत मानते थे। उन्होंने बड़ा प्रयत्न किया; परन्तु गवर्नर ने कहा कि अगर उनके पुत्र नहीं है तो झाँसी के राज्य को तुरन्त अंग्रेजी राज्य में मिला लो। आदेशानुसार रेजीडेन्ट ने किले को छोड़ कर बाकी सब राज्य अपने अधिकार में ले लिया। लक्ष्मीबाई बड़ी बुद्धिमान स्त्री थी। उसने अपने स्वर्गीय पति की आज्ञानुसार एक लड़का गोद लिया और राज–पाट उसे देने के सम्बन्ध में अंग्रेज सरकार से लिखा–पढ़ी चलायी। इसके साथ ही उसने अपने नाम से झाँसी शहर और किले में शासन करना आरम्भ कर दिया।

रानी लक्ष्मीबाई का नित्यक्रम इस प्रकार से था—–कसरत आदि का शौक उन्हें बचपन से था ही, सो स्वतंत्रता मिलने पर उन्होंने फिर से आरम्भ किया। तड़के ही उठ कर व्यायामशाला में ज़ोर करना, जोड़ी फिराना (मुगदर फिराना) वगैरह; फिर घोड़े पर सवार होकर घूमने के लिये जाना। घेरे में चक्कर लगाना, दीवार फाँदना, खाई पार करना, घोड़े के पेट से चिपक कर बैठना इत्यादि तरह–तरह की कसरत करना। कभी–कभी हाथी पर सवार होकर भी निकलती थीं, इस तरह सात–आठ बजे तक मेहनत करने के बाद जल–पान करती थीं। फिर कभी तो घंटे भर के लिये सो जाती थीं या वैसे ही स्नान करने चली जाती थीं। बाई साहब को नहाने का बड़ा शौक था। रोज गरम पानी के पन्द्रह–बीस हंडे लगते। आठवें–दसवें उत्तम सुवासित द्रव्यों से इतनी देर तक स्नान किया करती कि जो जल नलके द्वारा बाहर कुंड में जाता था, उससे बहुत सी स्त्रियों का स्नान हो जाता था। स्नान के बाद स्वच्छ, सफेद, चंदेरी साड़ी पहन कर; भस्म धारण करके आसन पर बैठती थीं। पति के मरने के बाद भी उन्होंने सिर के बाल नहीं कटाये थे। इसके लिये तीन कृच्छ (सांतपन प्रायश्चित) होते हैं। पहले उनका उदक (जल) छोड़ कर चाँदी के तुलसी–वृन्दावन में तुलसी की पूजा करती थीं, फिर पार्थिव–लिंग की पूजा आरम्भ होती थी। उस समय सरकारी गवैये गाते थे, पौराणिक लोग पुराण–पाठ करते थे और सरदारों तथा

आश्रित लोगों के मुज़रे भी होते थे। बाई साहब चारों ओर का ध्यान रखती थीं; यदि किसी दिन डेढ़ सौ मुजरों में से कोई एक नहीं हुआ तो दूसरे ही दिन उससे पूछती थीं कि कल आप क्यों नही आये थे? इस तरह १२ बजे तक देवार्चन हो जाने के बाद भोजन होता था। फिर कुछ देर इधर–उधर बिता कर या कभी थोड़ी देर तक सो चुकने के बाद नजराने में आयी हुई वस्तुएँ, जो चाँदी के थालों में रेशमी वस्त्रों से ढक कर रखी जाती थीं, उनमें से जिस चीज पर उनका मन आ जाता था, उसे अपने पास रख कर बाकी चीजें आश्रित–मंडली में बाँटने के लिए कोठीवाल को दे दी जाती थीं। तीन बजे के लगभग कचहरी करती थीं। उस समय कभी–कभी पुरुष वेश धारण करती थीं। पायजामा बण्डी, सिर पर टोपी रख कर तुर्रा (साफा) बाँधती थीं। कमर पर से ज़री का दुपट्टा कसा हुआ; उसमें तलवार लटकती रहती थी। इस प्रकार गौर–वर्ण की ऊँचे कद की मूर्ति साक्षात गौरी के समान लगती थीं। कभी जनाना वेश होता था; परन्तु पति के मरने के बाद उन्होंने नथ वगैरह अलंकार कभी धारण नहीं किये। केवल हाथों में सोने की चूड़ियाँ और गोठ, गले में मोतियों की माला और उंगली में एक हीरे की अँगूठी के सिवा बाई साहब के अंगों पर दूसरा अलंकार कभी नहीं देखा गया। बालों का बड़ा–सा जूड़ा कसा रहता था; स्वच्छ सफेद चोटी (परान्दा) और उस पर सफेद शाल ओढ़ती थीं। इस तरह कभी पुरुष वेश में तो कभी स्त्री वेश में दरबार में जाती थीं। एक कोठरी की तरह ही आड़ की जगह थी। उसके दरवाजे के बाहर सुनहरी मेहराब थी। उसके अंदर गद्दी लगी थी, बाई साहब उस पर तकिये के सहारे टिक कर बैठती थीं। सामने राजेश्री लक्ष्मणराव दीवानजी, हाथ बाँधे कागज लेकर खड़े रहते थे और दोनों तरफ श्री हुजूर के सात–आठ कारकुन बैठे रहते थे। लक्ष्मणराव देशस्थ ब्राह्मण था किन्तु; वह एकदम अक्षर–शत्रु ही था। लिखना–बाँचना उसे जरा भी न आता था; परन्तु उसकी खोपड़ी बड़ी दूर तक चलती थी। कचहरी में दीवानी, फौजदारी, मुल्की सब काम होते थे। बाई साहब की बुद्धि बड़ी चपल थी, इसलिये तुर्त–फुर्त हकीकत समझ कर उपयुक्त हुक्म

देती चलती थीं। स्वयं लिखने–पढ़ने में होशियार थीं, इसलिए कभी–कभी आप ही कागजों पर हुक्म लिखने लगती थीं। न्याय के कामों में बाई साहब बड़ी दक्ष और कठोर थीं। कभी–कभी तो खुद हाथों में छड़ी लेकर अपराधियों को सजा दिया करती थीं।

हर शुक्रवार और मंगलवार को वह अपने दत्तक पुत्र को साथ लेकर संध्या के समय नियमपूर्वक महालक्ष्मी के दर्शन करने जाती थीं। लक्ष्मीबाई की सवारी का ठाट भी देखने योग्य होता था। बाई साहब कभी तो मियाने (पालकी) पर और कभी घोड़े पर सवार होकर दर्शनों के लिए जाती थीं। किमखाब में ज़री के काम के बने हुए पर्दे दोनों तरफ पड़े रहते थे, जिससे मियाने की शोभा चौगुनी हो जाती थी। हुज़ूर (लक्ष्मीबाई) स्त्री वेश में जाती थीं; उस समय सफेद साड़ी पर मोतियों के आभूषण खूब फबते थे। कभी पुरुष वेश में होतीं तो पायजामा बण्डी और कलंगी टोपी सजी हुई, ज़री का कमरबंद––उस वेश की शोभा का क्या वर्णन किया जाये? जब मियाने पर चलती थीं तो उसके साथ ही साथ दो–चार सुंदर दासियाँ दौड़ती हुई चलती थीं। बचपन से ही इन दासियों को यही काम सिखाया जाता था। दक्षिण से अच्छे–अच्छे घरों की लड़कियाँ खरीद कर लायी जाती थीं, और उन्हें उत्तम से उत्तम भोजन खिला कर पंद्रह–सोलह वर्ष की आयु से पालकी के साथ दौड़ने का काम दिया जाता था। अविवाहित होने के कारण तारुण्य–मद में सराबोर होती थीं। पालकी के साथ में दौड़ने वाली दासियों को महल में सोने–मोती–हीरे के गहने दिये जाते थे, जिससे वे अपना नख–सिख सजाती थीं। उनकी चोलियाँ ज़री से मढ़ी होती थीं, उन पर हरे या खाकी रंग के दुप्रट्टे पड़े रहते थे। पैर मे तोड़े डाल कर लालरंग की जूतियाँ पहन कर हाथ में सोने या चाँदी का चँवर लिये हुए और दूसरा हाथ पालकी के दरवाज़े पर रखे हुए जब वे दौड़ती थीं; तब उन सुंदर सिंहकटि सर्वालंकारयुक्त कुवाँरी दासियों की ओर सब टकटकी बाँध कर देखते रह जाते थे। सवारी के आगे डंका और निशान होता था। रणवाद्य हल्के–हल्के बजते चलते थे। निशान के पीछे दो सौ विलायती (मुसलमान अरब) लोग होते थे और सवारी के आगे–पीछे भी इतने ही सवार होते थे। पालक़ी के साथ घोड़े पर कारगुजार

मुसद्दी (कर्मचारीगण)वगैरह तथा भैया साहब उपासने और कुछ आश्रित मंडली भी रहती थी।

इस तरह नरसिंघे, डंके बजाते हुए और बंदूकों की सलामियाँ दागते हुए जब सवारी किले से बाहर हो जाती थी; तब किले के बुर्ज पर शहनाई बजनी शुरू होती थी। सवारी लौट आने तक शहनाई बराबर बजती रहती थी। उसी तरह, महालक्ष्मी के देवालय के नक्कारखाने में भी शहनाई शुरू होती थी। किले से निकल कर सवारी भरे बाजार से होकर महालक्ष्मी जाती थीं और वैसे ही लौटती भी थीं। और जब हुजूर की सवारी घोड़े पर जाती थी, तब दासियाँ, आश्रित, कारकुन (कर्मचारीगण) प्यादे कोई भी साथ नहीं होता था। बस घुड़सवार और विलायती लोग ही होते थे। लौटने में यदि पालकी पर होतीं और रात हो जाती, तो मशालें जला ली जाती थीं। परन्तु जब घोड़े पर होती थीं, तब बिना मशाल के घोड़ा दौड़ाती हुई किले में आती थीं।

अपनी आश्रित (ब्राह्मण) मण्डली पर बाई साहब को बड़ी श्रद्धा थी। उन्हें अच्छे से अच्छा खाने–पीने को मिले; कपड़े–लत्ते बढ़िया हों, उन्हें सब तरह का सुख हो, इसके लिये वे बड़ी सतर्क रहती थीं। गुणियों का वे बड़ा आदर करती थीं। बड़े–बड़े शास्त्री विद्वान, वैदिक, याज्ञिक उनके पास रहते थे। पुस्तकों का संग्रह भी उन्होंने अपने यहाँ अमूल्य किया था। अच्छे–पुराने गवैये, सितारिये और देश–देश के नामी–गिरामी कारीगर अपने यहाँ रखे थे। बाई साहब स्वयं बड़ी ही निष्कपट और निर्मल वृत्ति से रहती थीं, फिर भी हौसला उन्हें सब तरह का था। कोई उत्तम गवैया आ जाता, तो उसका गाना सुन कर विदाई दिये बिना रहती ही न थीं। होली में रंग की धूम मच जाती थी। गदर के वर्ष में दत्तक पुत्र राव साहब के साथ होली में शहर गया था। जगह–जगह मुसद्दी लोगों के यहाँ पान–सुपारी लेकर रंग खेल कर फिर किले वापस आया।

उन्हीं दिनों ग्वालियर में कोंकण की एक नाटक मण्डली आयी थी। शहर के लोगों ने पत्र भेज कर उन्हें झाँसी बुलाया। जब शहर में उनके कई खेल हुए, तब बाई साहब ने सरकार की तरफ से

उनके खाने–पीने का प्रबन्ध कर दिया और किले में बुला कर कई नाटक करवाये। एक बार हरिश्चन्द्र का आख्यान हुआ। उस समय सदोवा नाटक वाले ने कहा—'इस नाटक में डोम के घर हरिश्चन्द्र के सिर पर मटका फोड़ा जाता है। इसके लिये परवानगी मिलने पर मटके मँगा लिये जाएँ।'

इस पर विचार करके बाई साहब ने परवानगी दे दी परन्तु; जब नाटक में मटका फोड़ा गया तो नाटकशाला में बैठी हुई वृद्धमण्डली को तुरन्त ही खटका। यह तो अपशकुन हुआ। नाटक बहुत ही अच्छे होते थे। संध्या के समय नाटक वालों को किले में आने दिया जाता था। साज–सज्जा के लिये उनके सामने सरकारी खजाना खोल दिया जाता था। हीरे के अलंकार और ज़री के वस्त्र पहन कर पात्र भला क्यों न खिल उठें। नाट्क समाप्त होने पर सबकी तलाशी लेकर उन्हें किले से बाहर किया जाता था। नाटक तो केवल दरबारियों और किले में रहने वाली स्त्रियों के मनोरंजन के लिये ही खेले जाते थे। अंत में नाटक वालों को बड़े ठाट के साथ विदाई दी गयी। किसी को पगड़ी, किसी को धोती–जोड़े, मैनेजर सदोवा को नकद चार हजार रुपये मिले।

अश्व–परीक्षा करने में बाई साहब अद्वितीय थीं। उस समय उत्तर भारत में तीन ही व्यक्तियों का नाम लिया जाता था। एक नाना साहब पेशवा, एक बाबा साहब आप्टे ग्वालियर वाले और लक्ष्मीबाई झाँसी वाली। एक दिन एक सौदागर दो घोड़े लेकर आया। घोड़े देखने में बड़े सुंदर, गठे हुये और चतुर थे। बाई साहब ने दोनों पर सवारी की और चक्कर लगा कर एक की कीमत तो एक हजार ठहरायी और दूसरे की पचास रुपये। उन्होंने कहा कि दूसरा घोड़ा देखने में तो बहुत उम्दा और चतुर लगता है लेकिन उसकी छाती फूटी हुई है। इसलिये वह निकम्मा है। सौदागर ने बाई साहब की कुशलता की तारीफ करके यह कबूल किया कि इस घोड़े को उसने उत्तम मसाले देकर दिखाऊ बनाया है। इसकी परीक्षा के लिये वह जगह–जगह घूमा; लेकिन परीक्षा कहीं न हो सकी। बाई साहब ने

वे दो घोड़े ठहरायी हुई कीमत पर खरीद लिये और सौदागर को बख्शीश देकर विदा किया।

अपनी प्रजा की बाई साहब बड़ी फिकर रखती थीं और राजकाज में खुद मेहनत करने में कभी आगा–पीछा नहीं करती थीं। झाँसी के राज्य में बरुआसागर नाम का एक छोटा सा शहर है। यहाँ चोरों ने बड़ा उपद्रव मचाया और प्रजा को बहुत पीड़ित किया। तब उन्होंने स्वयं बरुआसागर जाकर वहाँ पंद्रह दिन मुकाम किया और चोरों का पता लगा कर कुछ को फाँसी दी, कुछ को कैद किया और इस तरह अपनी प्रजा को निर्भय किया। अनेक गुणों से सम्पन्न इस स्त्री–रत्न में उदारता और शौर्य, ये दोनों गुण तो निरुपम ही थे।

कोई भी दरिद्र भिक्षुक कभी निराश नहीं लौटा। बाई साहब एक दिन महालक्ष्मी के दर्शन करने गयी थीं। सवारी वापस लौटते समय दक्षिण दरवाजे से होकर अंदर आयी तो हजारों भिखारी वहाँ खड़े हुये गुहार कर रहे थे। बाई साहब ने तुरंत ही लक्ष्मणराव दीवान से कारण पूछा। उन्होंने बताया कि यह लोग गरीब भिखारी हैं; आजकल सर्दी बड़े कड़ाके की पड़ रही है और तन ढकने के लिये कपड़े न होने के कारण इन सबका बुरा हाल हो रहा है। इसलिये यह लोग सरकार के चरणों में अर्जी लगाने आये हैं। बाई साहब को यह सुन कर बड़ा दुःख हुआ। छूटते ही हुक्म दिया कि आज से चौथे दिन सब भिखारियों को एक–एक रुई की टोपी, रुई की बण्डी और काली–सफेद कमली दे दी जाये। दूसरे ही दिन शहर के सारे दरजियों को जमा करके टोपियाँ और बण्डियाँ सिलाई जाने लगीं और बाई साहब के हुक्म के अनुसार ही चौथे दिन डौंढ़ी पिटवा कर शहर की सरकारी हवेली के सामने भिखारी लोग जमा किये गये। सामान्य गरीब लोग भी उनमें आ गये थे। लगभग चार हजार टोपियाँ और बण्डियाँ बाँटी गयीं।

ऐसी उदार, शूर, राजनीतिज्ञ स्त्री के प्रति अंग्रेज सरकार का व्यवहार बड़ा ही अन्यायपूर्ण था, इसमें जरा भी संदेह नहीं। पहले उन्होंने अपने दत्तक पुत्र को राज्य देने के लिये सरकार में अर्जी दी कि हमारा घराना बहुत प्राचीन है, और अंग्रेज सरकार के साथ

हमारा व्यंवहार सदा से बड़ी नेकनीयती और प्रेम का रहा है। हमारे सुलहनामे में भी गोद लेने के संबंध में निषेध नहीं है, इसलिये हमारे प्राचीन राजघराने, हमारी नेकी और सुलहनामे पर ध्यान देकर सरकार राज्य को अपने अधिकार में न ले और मेरे दत्तक पुत्र को कबूल करे। इस तरह के अनेक कारण उस अर्जी में दिखाये गये; परन्तु सरकार ने राज्य अपने अधीन कर ही लिया, केवल राजमहल और उसके अंदर की धन–दौलत रानी के पास रहने दी। बाई साहब ने बड़ी हिम्मत से काम लिया। अपने पति के पुराने नौकरों का वेतन कुछ कम करके उन्हें किले में रख लिया। उनके खर्च के लिये उन्होंने अंग्रेज सरकार से मिलने वाली अपनी पेन्शन की रकम में से ही काट–कसर करके प्रबंध किया परन्तु जले पर नमक छिड़क जाने के समान ही अंग्रेज सरकार ने वह पेंशन की रकम उनके स्वर्गीय पति के कर्ज के सिलसिले में कुछ दिन बाद बंद कर दी। पति के स्वर्गवास के बाद अपने सिर के बाल उतारने के लिये बाई साहब ने काशी जाने की परवानगी (अनुमति) माँगी, वह भी नहीं दी गयी। इस तरह के सैकड़ों खुड़पेंच लगाये जाने के सबब से उस मनस्विनी के मन में अंग्रेजों के लिये द्वेष–बुद्धि उत्पन्न हो चुकी थी परन्तु; जब धर्म के प्रति अन्याय बढ़ने लगे, तब तो बाई साहब के सिर से पैर तक आग लग गयी।

हिन्दू–धर्म में गौ–ब्राह्मण की बड़ी महिमा है और गाय के वध की बड़ी निन्दा की गयी है। लक्ष्मीबाई ने अंग्रेजों से यह कहा कि झाँसी में गौ–वध न किया जाये परन्तु; उनकी इस बात पर अंग्रेजों ने जरा भी कान न दिया। एक दूसरी घटना यह भी घटी कि महालक्ष्मी की पूजा के लिये दो गाँव अलग कर दिये थे। अंग्रेज सरकार का हुक्म हुआ कि वे गाँव भी अंग्रेजी राज्य में मिला दिये जायें। लक्ष्मीबाई ने इसके लिये भी बड़ा यत्न किया परन्तु; अंग्रेज सरकार अपने घमंड और राज्य–लोलुपता के कारण अपने पूर्व निश्चय से जरा भी टस से मस न हुई। लक्ष्मीबाई कोई साधारण स्त्री तो थी नहीं, अंग्रेजों के लिये उसके मन में द्वेषाग्नि इतनी भड़की कि एक दम कल्पान्त ही हो गया। उसने अपने बचपन के धर्म–भाई और

समदुःखी नाना साहब पेशवा से पत्र व्यवहार करना शुरू किया। अंग्रेजों से बदला लेने की उसने ठान ली और उसी काम में लग गयीं।

गदर के लिए निश्चित की गयी तारीख के एक दिन पहले गार्डन साहब के साथ छावनी के गोरे लोग बाई साहब के पास आये और उनसे विनती की कि कल से हमारे बुरे दिन आयेंगे, ऐसा देख पड़ता है। इसलिए आप अपने राज्य का भार सँभालें। झाँसी राज्य में जितना और मुलुक है, वह सब मिल कर पचीस लाख की आमदनी है। सो उसे फिर से अंग्रेज़ी अमल होने तक आपको ही सँभालना होगा और साथ ही जहाँ तक हो सके, आप ही हमारी रक्षा का भार ग्रहण करें तो बड़ा उपकार होगा। यह कह कर अंग्रेजों ने सारा दफ़्तर बाई साहब के हवाले कर दिया।

इस पर बाई साहब ने उत्तर दिया कि जब गड़बड़ी नहीं थी, तब तो मेरे माँगने पर भी मेरा राज मुझे नहीं लौटाया और अब दंगे के डर से अपने हाथ से राज निकल जाने का भय हुआ, तो उसे मेरे हाथों सौंपने आये हो। कलकत्ते वाली सभा में भी तुमने मुझे नहीं बुलाया। मेरे पति ने मरते समय तुम्हारी इतनी विनती–खुशामद की कि मेरे बाद मेरी पत्नी को दत्तक–पुत्र लेने की अनुमति देकर राज चलाने देना–सो भी तुमने नहीं मानी। मुझसे कह दिया कि आजकल ऐसा नया रूल बना है, जिससे राजे लोग गोद नहीं ले सकते। लेने पर वे अपनी ही जायदाद के मालिक ठहरेंगे, राज नहीं दिया जाएगा। फिर मैंने अपने केश उतारने के लिए तीर्थ जाने का हुक्म माँगा, सो भी नहीं दिया। और अब मुझसे शरण माँगने आए हो? इसके सिवा अगर मैं तुम्हें आश्रय दूँगी, तो काली पलटनें आकर हमें भी मारकाट डालेंगी। जहाँ तुम्हारा सींग समाय, वहाँ जाओ और अपनी जान बचाओ; मुझसे कुछ मतलब नहीं।

यह कह कर बाई साहब उठ कर चली गयीं। फिर गोरे लोग भी निराश होकर चल दिये।

दस बजे के लगभग पूर्व निश्चित समय के अनुसार ही काले

लोग बेरहम होकर दंगा करने लगे। छावनी में आग लगा दी गयी। उस छावनी में जो थोड़े – बहुत गोरे थे, उन सबको मारकाट कर काली पलटन ने गोला–बारूद की मैगजीन, खजाना, तम्बू वगैरह सब सामान अपने ताबे में करके छावनी जला कर राख कर डाली। काली पलटन वहाँ से चल कर फिर बाई साहब के महल के सामने पहुँची और ज़ोर–ज़ोर से उनकी जयकार करने लगी। तब बाई साहब ने बाहर आकर अफसर लोगों से भेंट की और उन्हें वचन दिया। पल्टन वालों ने भी उनसे कहा कि आप हमारी मालिक हैं। हम आपका हुक्म मानेंगे और हर महीने आप ही से अपना वेतन भी लेंगे।

इस तरह राज्य फिर अपना हो गया, और नगर में 'खलक खुदा का, मुलक बादशाह का, अमल लक्ष्मीबाई का' की डौढ़ी पिट गयी और सब काम–काज शुरू कर दिया गया। किले के जिस भाग में साहब लोगों का अधिकार था, उसे गौमूत्र आदि से शुद्ध करवा कर बाई साहब शुभ मूहूर्त्त में वहाँ रहने के लिए गयीं। नयी बन्दूकों, तोपों और गोले–बारूद की तैयारी का काम झपाटे के साथ शुरू कर दिया गया। जो पुराने आदमी थोड़ा वेतन पाकर भी बाई साहब के साथ ही रहे थे, उनका वेतन बढ़ा दिया गया और राज्य सम्बन्धी सब काम बड़ी अच्छी तरह से चलने लगा। शहर के परकोटे की मरम्मत शुरू की गयी और राज्य की रक्षा के लिए गृहयज्ञ–अनुष्ठानादि आरम्भ हुए।

झाँसी का राज्य लक्ष्मीबाई के पास फिर से आ जाने के लगभग ग्यारह महीनों तक तो ऐसा लगता था मानो उत्तर हिन्दुस्तान में अंग्रेज बिल्कुल थे ही नहीं। कालपी राज्य के अधीन छप्पन लाख का मुलुक था। तात्या टोपे ने उस पर अधिकार करके तहसीलदारों की नियुक्ति कर दी थी और दीवानी मुल्की काम बड़े ढंग से चल रहा था। फिर विलायत से इंग्लिश लोगों की पल्टनें आयीं और उन्होंने मद्रास की काली पल्टनों को भी अपने साथ लेकर आगे बढ़ना शुरू किया, हैदराबाद के निजाम से पाँच हजार सवार लिये; शिन्दे, होल्कर, गायकवाड़, घोरपड़े वगैरह सरदारों की मदद लेकर कप्तान

साहिब (सर ह्यू रोज़) बम्बई से जनरैली झण्डा फड़काता हुआ चला और खानदेश, सातपुड़ा वगैरह के मुल्कों का अंग्रेज़ी बन्दोबस्त भी करता चला। मऊ की छावनी में कुछ दिन रह कर इन्दूर (इन्दौर) के राज्य के सब दंगे वालों को छाँट–छाँट कर उसने कुचला।

झाँसी के पश्चिम में वेत्रवती (बेतवा) नदी के पास बाणपुर नाम का एक छोटा–सा राज्य था। वहाँ के राजा को लक्ष्मीबाई ने अपना बड़ा भाई माना था। बाणपुर का राजा गदर वाली (काली) पल्टनों को अपने यहाँ आश्रय देता था। उसने सोचा कि इस शहर में अंग्रेजों के साथ अपनी लड़ाई तो होगी ही, इसलिए शहर के लोगों को यहाँ से जहाँ–तहाँ जाने का हुक्म देकर अपने कुटुम्ब और खजाने को झाँसी भेज दिया जाय। जब यह खबर लगी कि कप्तान साहब की पल्टनें पास आने लगी हैं, तो उसने तुरन्त अपनी रैयत को बुला कर कहा कि यहाँ थोड़े दिनों बाद ही जंग होगी, इसलिए तुम लोग अभी से ही इधर–उधर गाँवों में अपने रहने की व्यवस्था कर लो। इसके बाद राजा अपना खजाना और घर के लोगों को लेकर झाँसी आए। लक्ष्मीबाई ने उन्हें रहने के लिए एक अलग महल दिया और उनके आराम का शाही बन्दोबस्त कर दिया। राजा फिर बाणपुर लौट गया। थोड़े दिनों बाद ही अंग्रेजी फौजें आकर बाणपुर में हल्ला करने लगीं। शहर को घेर कर सात दिन तक लड़ाई चली। अन्त में अंग्रेज सैनिकों ने शहर को जीत कर दोपहर तक हत्या और लूटपाट करने के बाद अपने नाम की दुहाई फिरवा दी। बाणपुर का राजा अपनी बची–खुची सेना को लेकर शहर से निकल गया और बेतवा की कछांर में जाकर जम गया। बेतवा का कछार इतना बड़ा है कि उसमें हज़ारों पल्टनें समा जाएँ।

झाँसी में यह खबर फैल गयी कि बाणपुर अंग्रेजों के ताबे में आ गया है। इस समाचार से झाँसी में अफरा–तफरी मच गयी। लड़ाई करने का दृढ़ निश्चय तो पहले से ही था; अब बाई साहब ने और भी जोरों के साथ नाकेबंदी करना शुरू कर दी। फौज में आये दिन नयी भरती हो रही थी और उन्हें खूब तैयार किया जा रहा था। शहर के परकोटे पर लोहे की दीवार के समान फौजें लगा दी गयीं। बुर्जी

पर बड़ी–बड़ी तोपें चढ़ गयीं। लालू बख्शी बारूद–गोले का सामान ज़ोरों से तैयार करने लगा। लड़ाई छिड़ने पर गरीब लोगों को खाने–पीने की तकलीफ हो जायेगी; इसलिये पहले से ही चने, मुरमुरे और मटर के भण्डार के भण्डार भर लिए गये। शहर में सब सामग्री अटूट भरी गयी। मौका पड़ने पर भोजन का मुक्तद्वार खोलने के विचार से गणपति के मन्दिर में शक्कर, घी, चावल, कनकी आदि सब सामानों का प्रबन्ध हो गया। सबके लिए पूरा पड़े, इतना धन राजकोष में नहीं था। इसलिए महल में जितनी बड़ी–बड़ी परातें, पंतीलियाँ, हण्डे, गगरे, डिब्बे, कण्डालें आदि चाँदी के बर्तन थे, वे सब टकसाल में भेज दिये गए और हजारों रुपये राजकोष में आकर पड़े। लड़ाई में जय मिले, इसलिए मन्दिरों में अनुष्ठान शुरू हुए। पत्र लिख कर कालपी से राव साहब और तात्या टोपे की सहायता माँगी गयी। इस तरह वह वीरांगना बिना किसी प्रकार की घबराहट के बड़ी शान्ति और चतुराई के साथ नगर का और युद्ध का बन्दोबस्त कर रही थी।

इधर अंग्रेज़ी फौजें सारे बुन्देलखण्ड पर अपना अधिकार जमा कर झाँसी के पश्चिम में डेढ़ कोस पर आकर जम गयीं। वहाँ अपने डेरे–तम्बू गाड़ देने के बाद कप्तान साहब ने एक सवार के हाथ बाई साहब को एक पत्र भेजा। दीवानजी उस पत्र को लेकर किले में आये और वहाँ चार–पाँच मुसद्दियों के साथ बैठ कर बाई साहब उस पत्र पर विचार करने लगीं।

पत्र का मजमून यह था कि बाई साहब खुद अपने साथ लक्ष्मणराव दीवान, लालू बख्शी, मोरोपन्त ताम्बे वगैरह आठ नाम लिखे थे, उनको लेकर मुझसे आकर मिलें। इनके अलावा और कोई भी साथ में न हो और सब लोग बिना हथियार के आयें। अंग्रेजों को युद्ध का निमंत्रण देने का निश्चय तो पहले ही हो चुका था। खाली यही सोचना था कि इस पत्र के जवाब में क्या लिखा जाए। इस पर विचार हो जाने के बाद यह लिखा गया, "क्यों मिलने के लिए बुलाया है, और वहाँ किसी तरह का दंगा तो नहीं होगा, इसका

आपके पत्र में खुलासा नहीं दिया गया। राज नियम के अनुसार हथियारबन्द सिपाहियों को लेकर ही दीवान लक्ष्मणराव आपसे मिलने के लिए आयेंगे। मैं औरत ज़ात, मेरा आना नहीं हो सकता। इसके ऊपर आपकी मर्ज़ी।"

यह पत्र लिख कर बाई साहब ने सवार के हाथ भिजवा दिया। पत्र का जवाब देख कर क़प्तान साहब की फौज दतिया वापस गयी और वहाँ से झाँसी पर चढ़ाई करने की तैयारी की। कालपी से दक्षिण डिंघाई के मुल्क की ओर दो–एक अफसरों के साथ फौज रवाना हो गयी। यह इसलिए किया गया कि ये फौजें पेशवा और तात्या टोपे को बराबर उलझाये रखें, जिससे कि वह लोग लक्ष्मीबाई की मदद करने के लिये न बढ़ सकें।

इधर बाई साहब ने एक चतुर और भरोसे के आदमी के साथ पाँच सवार करके उसे राव साहब के पास कालपी भेजा। उनके साथ यह सन्देसा कहलाया कि बाई साहब आपके भरोसे पर ही जंग लड़ रही हैं। आप बाहर से आकर अंग्रेजों को घेरें और मैं इधर से अंग्रेजों को नाकों चने चबवा दूँगी। राव साहब ने लक्ष्मीबाई की बात कबूल की और अच्छी तरह से भरोसा दिला कर सवारों को झाँसी लौटा दिया।

अंग्रेज सरकार ने झाँसी के अधीन गाँव–गाँव में जाहिरनामा लगा दिया कि झाँसी पर धावा बोला जाएगा। इसलिए सब लोग अपने भले–बुरे से चेत जायें। जीतने के बाद तीन दिनों तक अंग्रेज़ सरकार सारे मुल्क को विजन करेगी और उसका यह नियम है कि पाँच बरस से ऊपर और अस्सी बरस तक के बूढ़ों तक सबको मार डाला जायेगा। इसलिए जंग के दिनों में कोई झाँसी न जाए।

○ ○ ○

चैत का महीना आन पहुँचा, गर्मी के झोंके लगने लगे। वसन्त के जाने के बाद ग्रीष्म ऋतु का राज्य स्थापित हुआ। यह तो निश्चित हो ही चुका था कि झाँसी में लड़ाई होगी; इसलिए कुछ सावधान नागरिक अपने औरत–बच्चों और धन–दौलत को लेकर

ग्वालियर चले गये थे। इसलिये शहर में 'हलद कुँकू'' की जैसी भीड़–भाड़ और चहल–पहल होनी चाहिए थी, वैसी नहीं हुई। लोगों में उदासी छा रही थी। बाई साहब ने अपने मन में सोचा कि वह दिन सुदिन ही होगा, जब फिर 'हलद कुँकू' करने का समय आयेगा। इसलिये महालक्ष्मी की जो सेवा और वैभव है, उसे पूर्ण करना ही चाहिये। यह सोच कर उन्होंने राजमहल में 'हलद कुँकू' की बड़ी जबरदस्त तैयारी की। चार हण्डी चने एक छोटे से हौद में भिगो दिए गये। शुक्रवार का दिन निश्चय करके सबेरे शहर की तमाम स्त्रियों को बुलवा भेजा। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, मराठे–सब जातियों की स्त्रियों को आमन्त्रित किया गया और उन्हें 'हलद कुँकू', सुगन्धित पुष्प, चन्दन लेप, मिठाइयाँ, चाँदी की तश्तरियों में चने, गुलाब, इत्र और पान–सुपारी देकर सन्तुष्ट किया। दिन के दो बजे से रात के नौ बजे तक सब जातियों की स्त्रियाँ उत्तम प्रकार के वस्त्र और अलंकार से सज कर किले में ताँता बाँध कर आती रहीं। उसमें सरदार लोगों की स्त्रियाँ मियानों और पालकियों में बैठ कर, मालदार, चोबदार सिपाहियों के साथ शान से आती थीं। स्त्रियों को 'हलद–कुँकू' बाँटने के लिए लगभग सौ स्त्रियाँ खड़ी हुई थीं। लाखों फूल और मनों मिठाइयाँ बाँटी गयीं। दीवानखाने में एक मंजिल जितना ऊँचा गौरी का सिंहासन बनाया गया। उसकी सीढ़ियाँ उतरते–उतरते ज़मीन पर आती थीं और ऊपर ढेर का ढेर सामान सजा हुआ था। सब तरह के भोजन की जिन्स, फल–फूल, चाँदी का सामान, झाँसी का प्रसिद्ध पीतल का सामान, कागज़ के चित्र, तरह–तरह के मिट्टी के चित्र, लकड़ी का सामान, गमलों में फूलों के पौधे वगैरह सैकड़ों जिन्सें गौरी के सामने रखी गयी थीं। जहाँ–तहाँ किमख़ाब के पर्दे पड़े हुये थे और ज़री का चँदोवा बाँधा गया था। झाड़–फानूसों से तो सारा दीवानखाना चकाचौंध हो रहा था।

चैत बीता, बैशाख लगा। एक दिन शहर के दक्षिण की ओर मैदान में तम्बू गड़े दिखाई पड़ने लगे और इधर–उधर आग और रोशनी भी दिखाई देती थी। साँझ के समय शहर के चारों ओर

जगह–जगह पर तम्बू गाड़ कर पल्टनें उतरी हुई दिखायी दे रही थीं। चारों तरफ हलचल मच रही थी लेकिन; जैसा घेर दिखायी देता था, उसके हिसाब से मनुष्य कम थे। रात में भेदिये ने आकर बताया कि जैसा सरंजाम दिखता है, उस हिसाब से तो आदमी कम ही हैं। लड़वैये बहुत तो बहुत साठ हज़ार होंगे। बाकी सब बाज़ारी और लगुये–भगुये हैं। चढ़ाई हो गई है, यह देख कर रात में बाई साहब खुद किले पर और शहर की दीवालों पर घूम–घूम कर बन्दोबस्त करने लगीं। सब बुर्जों पर मोर्चे बाँध कर तोपें चढ़ा दी गयीं और वहाँ गोलन्दाज खड़े कर दिये गये। फाटकों के पास सिपाहियों की टुकड़ियाँ और उनके साथ एक–एक बहादुर और भरोसे के सरदार नियुक्त कर दिये गये।

दूसरे दिन सवेरे शहर की दीवार के पास मोर्चा बाँधने के लिए अंग्रेजों के बीस–पचीस सवार दौड़तें हुये आये और किले के पश्चिम की तरफ आकर दीवार की तरफ बढ़ने लगे; वैसे ही हमारी तरफ के दक्ष और होशियार गोलन्दाजों ने तोप में पलीता रख दिया। दस–पाँच मरे; बाकी भाग गये। इस तरह पहले दिन अंग्रेजी फौज शहर के चारों तरफ मोर्चे बाँधने का प्रयत्न करती थी; लेकिन; हमारे गोलन्दाज उनके चिथड़े उड़ा कर रख देते थे। दूसरे दिन भी इसी तरह मोर्चा बाँधने के लिए अंग्रेज पिले पड़ रहे थे लेकिन; मोर्चा न बँध सका। शहर में जो बड़े–बूढ़े लोग थे, उन्हें यह मालूम था कि शहर या किले पर कहाँ से मोर्चा लागू होता है लेकिन; यह जानकारी भी बहुत थोड़े लोगों को थी। अन्दर के षड्यन्त्र के कारण कहो या बाहर ही अंग्रेजों को इस बात का जानकार मिला, यह कहो––तीसरे दिन अंग्रेज मौके समझ गए। फिर रात होने पर उन्होंने सब ठिकाने साध कर साधारण मोर्चे बाँधे और चार घड़ी रात रहे किले के पश्चिमी बाजू पर अंग्रेजों की दक्षिण तरफ की गरनाली तोप चलने लगी। इधर वायव्य (पश्चिमोत्तर) दिशा की ओर भी तोप गोले बरसाने लगीं। शहर पर वार चलने लगे। यह देख कर बाई साहब को बड़ा दुःख हुआ और निराशा की पहली सीढ़ी से उनका पैर लगा। परन्तु वह ज़रा भी न डगमगायीं। जगह–जगह पर और अधिक बहादुर तैनात किए और

स्वयं भी खाने–पीने की चिन्ता छोड़ कर किले और शहर की दीवालों पर खपने लगीं।

शहर पर तोप के गोले शुरू होने से रैयत को बड़ा त्रास हुआ। एकाध गोला रास्ते में पड़ा तो फूट कर दस–बीस–पचास को घायल करता और दस–पाँच मारे जाते। किसी घर पर पड़ा, तो वह तो भस्म ही हो जाता था; उसके धक्के से आस–पास के छोटे घर खण्डहर होकर गिर पड़ते थे। आग लग जाती थी परन्तु; बाई साहब ने शहर में पानी के बम्बों का इन्तजाम बड़ा अच्छा कर रखा था। आग लगी नहीं कि बम्बे तुरन्त बुझाते थे। शहर में धन्धा–रोजगार बिल्कुल बन्द हो गया था। इधर–उधर आने–जाने से लोग घबराते थे।

केवल शहर में ही नहीं, किले के अन्दर भी यही हालत थी। किले में किसी छत पर गोला पड़ा तो वह फट कर बड़ी भयंकर आवाज करता था। छत टूटने से नीचे और आसपास के आदमी घायल हो जाते थे। फिर वही गोला दूसरी मंजिल का फर्श फोड़ कर तीसरी में गिरता था, फिर उसी तरह मनुष्यों का संहार होता था। इस तरह मंजिलों पर मंजिलें फोड़ता हुआ तोप का एक गोला अन्त में फूट कर चारों ओर बिखर जाता था। उसके अन्दर भरे हुए छर्रे, छुरियाँ, कीलें एकदम लाल होकर चारों ओर उड़ते हुए मनुष्यों का नाश करते थे। किला तोड़ने के लिए अंग्रेज सरकार ने बहुत गोले खराब किए। उन गोलों के बनाने में उन्होंने बड़ा खर्च किया। दो–एक गोले बिना फूटे ही रह गये। जब उन्हें वजन करके देखा, तो पक्के साठ–पैंसठ सेर के निकले। इस तरह अंग्रेजों के चतुर गोलन्दाजों ने उत्तम गोला–बारूद के समान से किले और शहर में त्राहि–त्राहि मचा दी परन्तु; बाई साहब ने यथाशक्ति गरीब–गुरबों का दुःख मिटाने का प्रयत्न किया। दक्षिणी ब्राह्मणों के लिए गणपति के देवालय में अन्नछत्र शुरू हुआ। दूसरे लोगों के लिए सदावर्त चालू किया। गरीबों को मटर, चने, मुरमुरे बाँटे जाने लगे।

इधर बाई साहब ने भी अपनी तरफ से अंग्रेजों की जबरदस्त नाकाबन्दी शुरू की। अंग्रेजों की तरफ के बहुत से लोग मारे गये।

चौथे दिन दोपहर में अंग्रेजों ने किले के दक्षिण बुर्ज की तोप बन्द कर दी। उस तोप पर कोई गोलन्दाज टिक ही न पाता था। लोगों में बड़ी हौलदिली फैल गयी। तभी पश्चिमी बुरुज वाले हमारे गोलन्दाज ने अपने मोर्चे की तोप दक्षिण की तरफ लगा दी, दुर्बीन से बेचूक निशाना साध कर तोप में पलीता लगाया और तीसरे धमाके में ही अंग्रेजों के उत्तम गोलन्दाज को ठंडा कर दिया। इस तरह दक्षिण की तोप फिर चालू करके उसने अंग्रेजों की तोप बन्द कर दी। गोलन्दाज की इस बहादुरी से प्रसन्न होकर बाई साहब ने उसे तत्काल अस्सी तोले चाँदी का एक तोड़ा बख्शीश में दिया।

आठवें दिन बड़ी प्रलय मची और बड़ा ही घनघोर युद्ध हुआ। बहादुर लोग ज़ोर–ज़ोर से एक–दूसरे को बढ़ावा दे रहे थे। बन्दूकों और तोपों की आवाज़ के सिवा और कुछ सुनायी ही न देता था। नरसिंघे, नगाड़े, बिगुल आदि बज रहे थे। धूल और धुआँ, बारूद, गोले, बन्दूकें और बाजों की आवाज़, मनुष्यों के चीत्कार सब मिल कर बड़ा ही भयंकर वातावरण उपस्थित कर रहे थे। अंग्रेज़ी फौजों ने बड़ी तबाही मचायी। रात में आकाश से तोपों के लाल–लाल गोलों की शहर पर मूसलाधार वर्षा हो रही थी। शहर में हज़ारों लोग मर गये; अपने प्राणों की रक्षा के लिये कोई गलियारों में, कोई पैखानों में, घरों के पीछे दौड़–दौड़ कर छिप रहे थे। परकोटे पर के सिपाही और गोलन्दाज एक के बाद दूसरे गिरते थे और उनकी जगह नये लोग खड़े किए जाते थे। बाई साहब को बड़ी मेहनत पड़ रही थी। चारों तरफ घूम–घूम कर सारा प्रबन्ध कर रही थीं। जहाँ ज़रा कमज़ोरी देखी, वहीं आदमी बढ़ाए। आदमियों को हिम्मत दी परन्तु; उन्हें बड़ी ही चिन्ता थी कि पेशवा की तरफ से मदद क्यों नहीं आ रही। इस चिन्ता ने उनको किंकर्त्तव्यविमूढ़ बना दिया। अन्त में लालू भाऊ देंकरे और भैया उपासने ने सलाह दी, कि राव साहब पेशवे की ओर से जल्दी मदद आये, इसलिए गणपति के मन्दिर में सौ ब्राह्मणों को अनुष्ठान पर बैठा देना चाहिए। उसके लिये तुरन्त ही सब प्रबन्ध हुआ और उससे बाई साहब को कुछ आश्वासन मिला। कई दिन से चूर–चूर हो रही थीं और उस दिन तो उन्हें साँस

लेने का भी अवकाश नहीं मिला। इसलिए दीवानखाने में जाकर ज़रा देर के लिए पड़ रहीं। वैसे ही एक भयंकर स्वप्न देखा। देखती क्या हैं कि एक गौरवर्ण की मध्यम वयस की सुवासिनी रूपवती स्त्री खड़ी है। उसकी नासिका सीधी, कपाल प्रशस्त, नेत्र काले और विशाल, शरीर पर मोती के अलंकार, लाल रंग की साड़ी और रेशमी चोली पहने हुए आँचल से कमर को कस कर किले के बुर्ज पर खड़ी है और बड़ी कठोर मुद्रा के साथ तोप के लाल–लाल गोले फैला रही है। गोले फैलाते–फैलाते उसके हाथों में काले–काले ठिक्कर पड़ गए हैं। बाई साहब को दिखा कर उसने कहा––"मैं ही यह गोले फैला रही हूँ।" स्वप्न देखते ही बाई साहब अचकचा कर उठ बैठीं और सबको यह स्वप्न सुनाया। सभी को आश्चर्य हुआ।

इधर कालपी से तात्या टोपे पन्द्रह हज़ार फौजें लेकर निकला और डबल कूच करता हुआ झाँसी पहुँचा। रातोरात मोर्चा बाँध कर उसने तोपों में पलीता लगाया। इधर कप्तान साहब भी अंग्रेजी फौज लेकर उससे लड़ने के लिए आ धमका। वह लड़ाई का दसवाँ दिवस था। झाँसी के लोग इस लड़ाई पर ही झाँसी के भाग्य का निर्णय समझते थे। सब लोग युद्ध देखने के लिए परकोटे की दीवार पर आकर जम गये। दोनों ही ओर के सिपाही अपनी जान होम कर लड़ रहे थे। किसी को भी अपना भान नहीं रहा। आमने–सामने की लड़ाई थी, प्यादे से प्यादा, सवार से सवार जूझ रहा था। बिगुल, नरसिंघों, बन्दूकों, तोपों इत्यादि की आवाज हवा में धुन्ध–सी बन कर छा गयी थी। बाई साहब और उसके सरदार लोग दुर्बीन लगा कर देख रहे थे। परन्तु झाँसी के दुर्भाग्य से कहो या तात्या टोपे की अकुशलता से कहो या हिन्दी सिपाहियों के नादान और अशूर होने से कहो, तात्या टोपे की फौज टूटने लगी। सिपाही लोग भागने लगे। अंग्रेजी फौजों ने मोर्चों पर से तोपें निकाल कर भागने वालों पर निशाना साधा। रिसाले सवारों ने एक दम हल्ला बोल दिया। यह देख कर स्वयं तात्या टोपे भी चौबीस पने और छत्तीस पने की तोप वहीं छोड़ कर मैदान से भाग गया। विजय मिलने से अंग्रेजों की हिम्मत दुगनी–चौगुनी हो गयी। उन्हें लड़ाई का सामान भी मिला।

झाँसी वालों में हाहाकार मच गया। सब लोग दुःख, भय और निराशा से टूट गये।

परन्तु निराशा की शक्ति भी कुछ विलक्षण ही होती है। सिपाहियों को अब यह विश्वास हो गया था कि झाँसी अंग्रेजों के हाथ लगेगी और वे हमारे ऊपर जरा भी दया न करेंगे। इस विचार से उनका हौसला और दूना हो गया। बाई साहब ने सब सरदारों को इकट्ठा करके कहा कि आज तक झाँसी लड़ी, तो कुछ पेशवा के बल पर नहीं और आगे भी उसे किसी की मदद की ज़रूरत नहीं। ऐसा निश्चय करके सरदार लोग और स्वयं बाई साहब परकोटे की दीवालों पर फिर से मेहनत करने लगीं। उसी दिन रात में अंग्रेजी गोलन्दाजों ने फिर भयंकर हमला किया। शहर और किले पर लाल–लाल गोलों की झड़ी लगा दी। किले के सब लोग रात भर जागते हुए बैठे रहे।

रात गयी और युद्ध का ग्यारहवाँ दिवस आ पहुँचा। बाई साहब तलवार बाँधे हुए चारों ओर सबको हिम्मत बँधा रही थीं। गोलन्दाजों को बख्शीशें दी गयीं। जो तोपें बन्द हो गई थीं, वे फिर शुरू हुईं। अंग्रेजों ने अपनी सारी गरनाली तोपें किले पर ही लगा दीं। तब तो महलों में हाहाकार मच गया। इतने में ही एक दिगन्तव्यापी सुस्वर ध्वनि सुनाई पड़ी। देखा तो दूसरी मंजिल पर गणपति में जहाँ नवरात्रि में कथा–कीर्तन इत्यादि बड़े हौसले से किए जाते थे और जो एक तरह से शीशमहल ही था, वहाँ गोला पड़ा था। उसमें चारों ओर लखनऊ के आरसे (शीशे) लगे हुए थे। छत भी शीशे की बनी हुई थी। झाड़, फानूस इत्यादि अनेक तरह के मूल्यवान काँच के सामान से वह कमरा ठसाठस भरा हुआ था। उसके ऊपर तीन मंजिलें और थीं। गरनाली तोप का गोला भयंकर आवाज के साथ हर मंज़िल को फोड़ता हुआ कीलें और छर्रे उड़ाता हुआ इस शीशमहल में सुस्वर ध्वनि के साथ आकर गिरा था। काँच का एक भी सामान न बचा। चार मनुष्य मरे और नौ जख्मी हुये।

उस दिन महलों पर ही अंग्रेजी तोपों की शनि–दृष्टि थी; परन्तु ख़ास महल को कोई नुकसान नहीं पहुँचा। बादशाही जमाने का चूने

से बना हुआ मजबूत महल कुछ यों ही टूट सकता था? जहाँ गोला पड़ता, वहाँ उतना बड़ा छेद हो जाता। यों दो–तीन छतों में भंबक हो जाते थे और गोला नाकाम हो जाता था। परन्तु ऐसा नुकसान भी कुछ कम न हुआ था। महल के हरेक दालान पर गोले पड़ने लगे।

इस तरह लगातार ग्यारह दिन तक लड़ाई चली। फिर भी, शाबाश है उस स्त्री को ! उस रात को रोज़ की तरह बाई साहब शहर और किले पर गश्त लगा कर जब बन्दोबस्त कर रही थीं; इतने में ही एक भेदिये ने आकर खबर दी कि दो–ढाई लाख रुपयों का गोला–बारूद खर्च करके भी अंग्रेज सरकार को जय मिलती नहीं दिखायी देती। उनका गोला–बारूद भी अब चुक गया है। इसलिये कल पहर भर लड़ाई लड़ने के बाद उनका लश्कर उठ जायेगा। यह सुन कर बाई साहब को अपार आनन्द हुआ। उनके चेहरे पर और भी दमक आ गयी और उनकी शक्ति और हिम्मत दोगुनी हो गयी। उस रात को दो बजे के लगभग निश्चिन्त होकर वह गहरी नींद में सो गयीं। लेकिन बाई साहब के ग्रह अच्छे नहीं थे। लगभग पौ फटने के समय शहर के दक्षिण बाजू की तोप एकाएक बन्द पड़ गयी। यह खबर लेकर एक आदमी आया और बाई साहब को जगा कर उसने सारा हाल कहा। सारी हकीकत उससे सुन कर सबके पेट में पानी हो गया और सबके प्राण भीतर ही भीतर घुटने लगे। अट्ठासी पहर तक बड़ी बहादुरी के साथ लड़ने के बाद अन्त में अंग्रेजों ने शहर को सर कर ही लिया।

बाई साहब ने जैसे ही हकीकत को समझा, वैसे ही सहस्र बिच्छुओं के डंक मारने के समान उन्हें दुःख हुआ। चेहरे की आब उतर गयी। अक्ल गुम्म हो गयी। सोने से पहले जो खबर सुनी थी, वह क्या थी ! और अब यह खबर ! इसका अर्थ क्या है? भय, दुःख और आश्चर्य से चित्त ऐसा उद्विग्न हुआ कि क्या करना चाहिए, उन्हें सूझता ही न था ! बाहर आकर शून्य दृष्टि से वे दक्षिंण दिशा की ओर देखने लगीं, जहाँ से हजारों गोरे सिपाही बढ़े चले आ रहे थे। परन्तु बाई साहब साधारण जनता की तरह कुछ नादान थोड़ी ही थीं, भय और विचार–शून्यता का क्षण दूर गया। तुरन्त ही बाई

साहब को शूरत्व का आवेश आ गया। पन्द्रह सौ विलायती अर्थात् मुसलमान अरब, जो बहुत दिनों से उनके यहाँ नौकर थे, उन्हें लेकर तलवार खींच कर वे तुरन्त ही किले से नीचे उतरीं और बड़े दरवाजे से दक्षिण की ओर चल दीं। गोरे लोग शहर में आ गये थे। उनकी तलवारें भी म्यानों से बाहर निकल आयी थीं। सबके पीछे से चलते हुए बाई साहब सेना के मध्य से होकर तलवार लिये आगे बढ़ रही थीं। गोरे और विलायती लोगों की तलवारों में गाँठ पड़ते ही चारों ओर भीषण–दृश्य उपस्थित हो गया कि उसकी उपमा केवल महाभारत के युद्ध से ही दी जा सकती है। सौ तक गिनती गिनने में देर लगेगी, परन्तु जोश में भरे हुए विलायतियों को सैकड़ों गोरे मारने में उतनी भी देर न लगी। बाकी जो बचे थे, वे शहर में इधर–उधर भागकर घरों और पेड़ों की आँड़ से बंदूकें तानने लगे। पीछे से जो गोरे लोग आ रहे थे, उन्होंने भी तलवार न चला कर दूर से ही गोलियाँ मारनी शुरू कीं। उस समय बाई साहब के साथ एक पचहत्तर वर्ष का वृद्ध और पुराना सरदार था। वह आगे आकर बाई साहब का हाथ रोक कर कहने लगा, "महाराज, इस समय आपको आगे जाकर गोली का शिकार होना व्यर्थ है। गोरे लोग इमारतों की आड़ लेकर गोलियाँ चला रहे हैं। सैकड़ों गोरे शहर के अन्दर आ गये हैं। इसलिये शहर के सब फाटक उन्होंने खोल दिए हैं। इस समय लड़ने से कुछ हासिल नहीं। आप किले में जाकर दरवाज़ा बन्द करके फिर कोई युक्ति सोचें। हमें समय को फिर से लौटा लाना है।"

यह कह कर उसने बाई साहब को वापस भेज दिया और हाँक मार कर विलायतियों से भी लौटने को कहा, सब लोग किले में पहुँच कर फाटक बन्द करके बैठ गये।

इधर चारों ओर के फाटकों से गोरे अन्दर आने लगे और विजन करना शुरू किया। पाँच बरस से लगा कर अस्सी बरस तक जो भी पुरुष दिखा, उसे गोली या तलवार से पार उतार दिया। शहर के एक भाग में आग भी लगा दी। गोरे लोग घरों में घुस कर मनुष्यों की हत्या और सोने–चाँदी की लूट करने लगे। उनके घरों में घुसते

ही, जो दिखाई दिया, उस पर सीधी बन्दूक तन जाती थी। यदि उसने चटपट अपना माल–असवाब गोरों के हवाले कर दिया, तब तो भली–भला, नहीं तो प्राण यमलोक में।

बाई साहब किले में आकर बड़ी शोक–विह्वल होकर दीवानखाने में बैठ गयीं। एक पहर के बाद शहर के हाल–चाल लेने के लिए बाई साहब छत पर आयीं। उस समय शहर का जो अति दीन दृश्य उनकी आँखों के सामने आया, उसे देख कर उनके आँसू न रुक सके। हलवाईपुरा शहर का एक बड़ा और सम्पन्न भाग था। उसमें से आग की लपटें निकल रही थीं। भरी गर्मी के दिन, मध्यान्ह का समय और आकाश तक ऊँची उठने वाली ज्वालाओं का ताप, दुःसह हो गया। जहाँ–तहाँ चीख–पुकार और रोने–पीटने का कुहराम मचा हुआ था। बन्दूकों की आवाज़ एक के बाद दूसरी लगातार कानों के पर्दे फाड़ रही थी। मरते समय का दुःखकारक शब्द करते हुए हज़ारों कुत्ते रो रहे थे। बैल, घोड़े, खच्चर, ऊँट आदि के विभिन्न स्वर मिल कर एक करुण हाहाकार बना रहे थे। उस भयंकर स्थिति की याद आने से रोंगटे खड़े हो जाते हैं। बाई साहब को यह लगा कि मेरे कारण इन बेचारे निरपराध प्राणियों की जान जा रही है।

स्त्रियों का हृदय बड़ा कोमल होता है। उन्हें तुरन्त ही दूसरों पर दया हो जाती है। पुरुषों की तरह उनका मन कठोर नहीं होता। बाई साहब का हृदय दुःख और करुणा से इतना ओत–प्रोत था कि उन्हें यह लगने लगा कि मैं महापातकी हूँ, यह निश्चय उनके मन में कायम हो गया। सब लोगों को बुला कर उन्होंने कहा, "मैं महल में गोला बारूद भर कर इसी में आग लगा कर मर जाऊँगी, लोग रात होते ही किले को छोड़ कर चले जाएँ और अपने प्राण की रक्षा के लिए उपाय करें।"

बाई साहब को जिस वृद्ध सरदार ने सवेरे किले लौटाया था, वही इस समय भी आगे बढ़ा और बाई साहब को दीवानखाने ले जाकर कहने लगा, "महाराज आप ज़रा शान्त हों। ईश्वर ही शहर पर यह दुःख लाये हैं; मनुष्य उसका कोई इलाज नहीं कर सकता। सारी बातें पूर्व संचित कर्मों के अनुसार ही होती हैं। आत्महत्या

करना बड़ा पाप है। अपने पूर्व पापों के कारण इस जन्म में तो ये फल भोगने पड़े; सो अब और पातक बढ़ाने से लाभ ही क्या? दुःख में धैर्य धारण करके गम्भीरतापूर्वक सोचना चाहिये कि उससे बचने के लिए आगे कोई रास्ता निकल सकता है या नहीं। आप शूर हैं, रात में तैयारी करके शहर के बाहर निकल चला जाय। मौका पड़ने पर शत्रु से दो हाथ लड़ते हुए घेरा तोड़ कर पेशवा से मिला जाय। इस बीच में यदि मृत्यु आ गयी तो बहुत अच्छा। यहाँ आत्महत्या करके पाप संचय करने की अपेक्षा युद्ध में स्वर्ग जीतना उत्तम है। इसलिये आप ज़रा भी दुःख न करें, स्वस्थचित्त होकर स्नान–भोजनादि करें और रात में शत्रुओं की आँखों में बत्तियाँ जला कर बाहर चलने की तैयारी करें।"

इन शब्दों से बाई साहब को बहुत कुछ धीरज बँधा और वे स्वस्थ हुईं। पिता के समान दो बार सुमार्ग दिखलाने वाले उन वृद्ध सरदार के चरण छुए। इसके बाद सब लोगों ने उन वृद्ध सरदार के कहने के अनुसार ही स्नान–भोजन आदि नित्यकर्म निपटाये। दीया जले भिक्षुक मण्डली को बख्शीशें देकर बाई साहब ने बड़े प्रेम से विदा किया। जो लड़वैये नहीं थे, उन्हें और दास–दासियों को भी सब तरह से सन्तुष्ट करके जाने की परवानगी दी। इस तरह सब लोग किले से निकल कर शहर में आये।

इधर बाई साहब रात के बारह बजे सब तैयारी करके किले के बाहर निकलीं। मोरोपन्त ताम्बे आदि जितने सगे–सम्बन्धी थे, वे सब भी हथियारबन्द होकर घोड़े पर सवार होकर साथ हो गये। हरेक की कमर से मोहरें बँधी थीं। खजाने में जो कुछ अर्थ था, वह सब एक हाथी पर लादा गया और उसे बीच में किया गया। साथ में दो सौ पुराने और जान पर खेल जाने वाले सरदार थे। इसके अलावा सवेरे अंग्रेजों के छक्के छुड़ाने वाले एक हज़ार दो सौ विलायती बहादुर भी चल रहे थे। बाई साहब पाजामा, स्टाकिन बूट वगैरह पुरुष वेश धारण किये हुए थीं और हरबे–हथियार से पूरी तरह लैस थीं। बाई साहब जिस घोड़े पर सवार थीं, वह एकदम सफेद था, ढाई हज़ार रुपये में खरीदा गया था और राजरत्न के समान ही उसका आदर

था। उस घोड़े पर बैठ कर पीछे रेशमी दुपट्टे से अपने बारह वर्ष के दत्तक पुत्र को बाँध कर और साथ में केवल एक रुपये की रेजगारी लेकर महारानी बाहर निकलीं।

इस तरह सब तैयारी होने पर 'जय शंकर' की हाँक मार कर मण्डली किले से नीचे उतरी और बीच शहर से होकर दरवाजे से बाहर निकली। सैकड़ों लोग बाई साहब का अन्तिम संदेश लेने के लिए रास्ते पर खड़े थे। उस समय अंग्रेजों की ज़रा भी परवाह न करते हुए मौत के मुँह में हाथ देकर झाँसी की प्रजा अपनी महारानी से मिलने के लिए खड़ी हुई थी। उन्हें देख कर यह पक्का भरोसा हुआ कि ये वीर अपनी जान पर खेल जायेंगे परन्तु महारानी पर आँच न आने देंगे। जैसे ही बाई साहब शहर से निकलीं कि अंग्रेजों को खबर मिली। तुरन्त ही हल्ला–गुल्ला करके सबको सावधान किया और तोप चालू की। बाई साहब के पास बन्दूक थी। वे उसे दागती हुई घोड़ा फेंक कर भागीं। उस हुल्लड़ में दोनों तरफ के बहुत से लोग कट गए। जो बचे वे अँधेरे में रास्ता भटक कर जहाँ सींग समाया, वहाँ भागे। चारों ओर सवार ही सवार थे। उसमें अंग्रेजों को यह पता नहीं लग पाया कि बाई साहब का घोड़ा कौन–सा है। बाई साहब ने जो घोड़ा फेंका तो वह पल भर में अंग्रेजी फौज़ों का घेरा तोड़ कर उन्हें बहुत पीछे छोड़ता हुआ आगे निकल गया। उनके साथ ही दूसरे घोड़े पर एक दासी थी। इस तरह बाई साहब और उनकी दासी दुश्मन के डेरे पार करके कालपी के रास्ते पर चल दीं। एक कोस तक अंग्रेजों ने इनका पीछा किया परन्तु; उन्हें बाई साहब के पैरों की धूल भी न मिली। रात का समय था, अँधेरे में कुछ सूझा नहीं। निराश होकर लौट आये परन्तु; इसमें भी अंग्रेजों को कुछ धोखा–सा ही रहा। कभी सोचते कि बाई साहब कहीं निकल कर जा नहीं सकतीं; यहीं कहीं होंगी। इसलिये बड़ी देर तक अपनी बारूद खराब करते रहे। सबेरा होने पर लाशों में देखा तो सब सिपाहियों की ही थीं; उन लोगों का कहीं भी पता न था।

इधर बाई साहब सवेरा होते–होते झाँसी मुलुक की सरहद पर एक गाँव में जा पहुँची। वहाँ उन्होंने अपने दत्तक पुत्र को पीठ से

खोल कर महालकरी के यहाँ भोजन कराया। महालकरी से सब हाल कहा, फिर आप मुँह में एक दाना भी न देकर लड़के को पीठ से बाँध कर कालपी की ओर चल पड़ीं। दिन भर बिना रुके घोड़े दौड़ते ही रहे और आधी रात के लगभग कालपी जा पहुँचे। चौबीस घंटे बिना खाए–पिए बाई साहब ने पीठ से बोझ बाँध कर भर दाँव भागते हुए घोड़े पर काट दिए। इससे उस स्त्री की शक्ति, हिम्मत और धीरज का कमाल दिखलायी पड़ता है। अस्तु !

रात बहुत हो चुकी थी, इसलिए गोदाम पहुँच कर बाई साहब ने श्रीमन्त को अपने आने की खबर नहीं की। सवेरे प्रातः कर्मों से निपट कर यह विचार कर रही थीं कि पेशवा से किस तरह मिला जाय, स्त्री–धर्म के अनुसार वे अस्पर्श दशा को प्राप्त हुईं। उस समय बाई साहब के अन्तःकरण में पहले से भी दस गुना अधिक दुःख हुआ–––स्त्रियों ने यदि अति शौर्य भी किया, तो उसका उपयोग ही क्या? मौके पर घात करने वाला उनका शारीरिक–धर्म उनके साथ लगा हुआ है ही। आग में घी इस प्रकार से पड़ा कि बाई साहब के पास स्त्रियों का एक भी वस्त्र नहीं था। नए वस्त्र खरीदने के लिए पास में पैसा भी नहीं था। केवल एक रुपये की रेजगारी और हाथ में हीरे की एक अँगूठी ही थी। दासी के पास भी कोई साधन न थे। अब किसका मुँह देखा जाय? पेशवा के यहाँ कोई स्त्री नहीं, सब पुरुष ही थे; उनके यहाँ जाकर यह सब कहने का विचार करते ही उनके प्राणों पर बन आती थी। हर ! हर ! इस विपत्ति–प्रसंग में अबला के मनोधर्म के अनुसार ही उनकी आँखों में आँसू बहने लगे। दासी भी रोने लगी। तभी किसी तरह राव साहब को खबर लगी। उन्होंने तुरन्त ही तात्या टोपे को बाई साहब के लिए योग्य बन्दोबस्त करने के लिये भेजा। तात्या ने बाजार से कीमती लुगड़ी और मुगटा लाकर दिया। भोजन के लिये सोने–चाँदी के बर्तन, बिस्तर–बिछौना, तम्बू–कनाती, सब उचित प्रबन्ध करके पहरे पर सिपाही तैनात किये। फिर लक्ष्मीबाई ने तात्या टोपे और राव साहब से मिल कर सब हाल–हकीकत कही। बाई साहब के घोड़े ने अच्छी नौकरी बजायी थी परन्तु; गोदाम पर पहुँच कर वह थक कर गिर पड़ा। बाई

साहब उसे बहुत ही चाहती थीं। दूसरे दिन सात–आठ मजूरों ने मिल कर घोड़े की दोपहर तक मालिश की। घोड़ा फिर उठ कर चंगा हो गया।

इस तरह मृत्यु के मुँह से छुटकारा पाकर बाई साहब अपनी मित्र मण्डली में जा मिलीं; परन्तु झाँसी की याद उनके मन को कचोटती ही रही। कालपी में तीन दिन लड़ाई चली। पेशवा की फौजें लड़ाई के लिए बेकार हो चुकी थीं। दिल्ली, लखनऊ, झाँसी वगैरह में अंग्रेजों की विजय होने से गदर वाले बहुत कुछ निराश हो चुके थे। इसलिए बहुत से पुराने तजुर्बेकार पल्टनी लोग अपने प्राणों के भय से पल्टनें छोड़ कर चले गए थे। अंग्रेज सरकार ने उनके नाम पहले से ही जगह–जगह जाहिरनामे में लगा रखे थे। इसलिये भेष बदल कर वे लोग दूसरे काम–धन्धे करने लगे। जो नये लोग रखे गये थे, वे बिलकुल नौसिखिये थे। उन्हें ढंग की कवायद भी न आती थी; इसलिये टिकाऊ नहीं थे। इतना ही नहीं, गदर वालों की पल्टन के साथ अच्छे और दमदार लोग जब मिलने को राजी नहीं हुए, तो नये सिपाहियों, चोरों, लुच्चों और लुटेरों की भर्ती होने लगी। उनका लक्ष्य लड़ाई न होकर लूट अधिक थी। तीसरे दिन जब उन सिपाहियों को लगा कि जीत अंग्रेजों की होगी और पेशवा टूटेंगे, तो वे लोग सैकड़ों की तादाद में लड़ाई का मैदान छोड़ कर शहर में जा घुसे। उन्होंने दंगा, लूट, अनीति करना शुरू कर दी। अच्छे–अच्छे घरों को फोड़ कर घुस गये और खूब लूट मचायी। चीनी के व्यापार के लिए प्रसिद्ध कालपी की सड़कों पर चीनी की बिछावत बिछ गई। अनाथ स्त्रियों की बड़ी ही दुर्दशा की गयी। ये लोग लूट–पाट कर ही रहे थे कि इतने में अंग्रेज लोग सारे मोर्चे जीत कर शहर में आ गये। उन्हें देखते ही ये डाकू काले सिपाही जहाँ सींग समाया, उधर ही भाग निकले। सैकड़ों की हत्या हुई। तात्या टोपे, राव साहब (नानाराव पेशवा) और झाँसी वाली रानी लक्ष्मीबाई ने अपना रंग फीका देख कर पहले ही जंगलों की राह ले ली थी।

कालपी में पेशवा की हार होने पर वे सब ग़दर वाली पल्टनें ग्वालियर की ओर उलट पड़ीं। मुरार में शिन्दे सरकार की फौजी

छावनी थी। उन्होंने वहाँ जाकर मोर्चा बाँधा और शिन्दे को कहलाया कि वे या तो खर्च के लिये गदर की पल्टनों को चार लाख रुपये दें, नहीं तो मैदान में आयें। उस पर दिनकर राव राजवाड़े दीवान ने जवाब दिया कि लड़ाई के लिये तैयार हैं। जयाजी महाराज शिन्दे, उनके दीवान आदि मुड्ड लोग थे। सब फौज़े लेकर मुरार नदी के पार पहुँचे। शिन्दे की तरफ के बहुत से पल्टनियों ने यह कहा कि हम लड़ाई का ठाट तो बाँध देंगे लेकिन; पेशवा पर गोली नहीं चलायेंगे क्योंकि वे आपके और हमारे दोनों के मालिक हैं। इतने में ही गदर वाली फौज की तरफ से तोप में पलीता दे दिया गया और मारू बाजे बजने लगे।

शिन्दे और दीवान ने अपनी ओर के गोलन्दाजों को बहुत–बहुत कहा मगर उन्होंने जवाब दे दिया कि हम नमकहरामी नहीं करेंगे, पेशवा पर गोले नहीं दागेंगे। शिन्दे राजा और दीवान दोनों ही घोड़े से उतर पड़े और अपने हाथों तोप में बत्ती लगायी। परंतु; तोपों के अंदर तो बाजरे की थैलियाँ भरी हुई थीं। तब तो शिन्दे राजा और दीवान राजवाड़े हक्का–बक्का हो गये और तुरन्त ही घोड़े पर सवार होकर आगरे का रास्ता पकड़ा। इधर लड़ाई की चुट–पुट तो हो ही चुकी थी, सौ––दो सौ आदमी मारे काटे गये कि इतने में शिन्दे और उनके दीवान के भाग जाने की खबर चारों ओर फैल गयी। शिन्दे के सिपाही यह सुनते ही इधर–उधर भाग खड़े हुये। लड़ाई बन्द हो गयी। श्रीमन्त पेशवा की ओर शहनाई बजने लगी और उन्होंने लश्कर की ओर कूच किया।

शहंर के राजमहलों में पहले किसे भेजा जाये, श्रीमन्त रावसाहब इसका विचार कर रहे थे। तभी झाँसीवाली रानी ने स्वयं वहाँ जाने की आज्ञा माँगी। राव साहब ने कहा कि शत्रु का शहर है, महलों में बड़े धोखे होंगे। बंदोबस्त करके जाना। तब बाई साहब दो सौ सवारों को लेकर बड़े गंभीर भाव से शहर में आयीं। सराफे और प्रमुख बाजारों से सवारी चली आ रही थी। बाई साहब के सम्मान में आगे बंदूकों से हवा में फैर करते चलते थे। इस तरह, सवारी महलों में पहुँची। महल के पीछे वाले हिस्से के लोग अभी नहीं गये थे।

कारण कि वे सब वायजा बाई साहब शिन्दे के कारकुन थे। उन्होंने जाकर कहा कि इधर वायजा बाई साहब रहती हैं, अपने लोगों को इधर आने से रोक दीजिये। झाँसीवाली रानी ने तुरन्त ही अपने लोगों को ताकीद कर दी कि जहाँ–जहाँ बाई साहब के ताले पड़े हों, उधर तुम लोगों के जाने का कोई काम नहीं। वायजा बाई साहब चार–पाँच दिन पहले महल छोड़ कर परेड की तरफ चली गयी थीं।

झाँसी वाली रानी ने महल में जाकर पहले तो वहाँ की सब चीजें अपने ताबे में ले लीं और फिर राव साहब और तात्या टोपे को खबर भेजी कि यहाँ सब ठीक है, आप चले आइये। तब राव साहब की सवारी बड़े ठाठ–बाट के साथ शहर के बड़े–बड़े बाजारों से होकर धीरे–धीरे आगे चलती हुई महलों में आयी। शिन्दे सरकार के मुनीमों और कारकुनों ने उनको भेंट दी। राव साहब ने कहा कि हम यहाँ ब्रह्मभोज कराना चाहते हैं। इसलिए कल से मुक्त द्वार भोजन का प्रबन्ध करो। बेसन के लड्डू और पकवानों के साथ एक–एक रुपया दक्षिणा बाँटी जाय। हम यहाँ जब तक रहेंगे, तब तक यह कायदा रोज चलेगा। मुनीमों ने हाथ जोड़ कर कहा कि महाराज के हुकुम के अनुसार ही सब सरंजाम हो जायेगा।

दूसरे दिन से मुक्त द्वार ब्रह्मभोज आरंभ हुआ। हर ब्राह्मण को एक–एक रुपया दक्षिणा मिलने लगी। महादजी बाबा शिन्दे ने अपना खजाना रखने की एक गुप्त जगह बनवायी थी, जो गंगाजली के नाम प्रसिद्ध थी। तब से शिन्दे सरकार का खजाना उसी में जमा होता था। राव साहब, तात्या टोपे और झाँसी वाली रानी ने गंगाजली का पता लगा कर उसे अपने अधिकार में ले लिया। सोना, चाँदी, मोती इत्यादि सब अर्थ देख कर तात्या टोपे ने प्रश्न किया कि जब महादजी बाबा के समय से यह गंगाजली भरती आ रही है तो इस समय इसमें उस हिसाब से ऐश्वर्य कम क्यों है? इस पर शिन्दे सरकार के बड़े खजांची ने कहा कि खर्च के वक्त खर्चा भी तो इसी में से निकाला जाता रहा है और कभी–कभी नास–नुकसान भी हुआ। यह सुन कर सबका समाधान हो गया।

अब ये सब बड़े–बड़े सरदार लोग इस सोच में पड़े कि अभी हम

लोग निर्भय तो नहीं हुये। राज के प्रबन्ध के लिए भी अपने पास अच्छी फौज नहीं। थोड़े दिनों में अंग्रेज यहाँ आ ही पहुँचेंगे और लड़ाई होगी। तब हमें जंगलों में जाना पड़ेगा, इसलिये जितना पैसा भी मिले, सब बटोरना चाहिये और यहाँ से पश्चिम में जहाँ कहीं भी पानी की अच्छी व्यवस्था हो, वहाँ कुछ लोगों को तैनात करके यहाँ से सामान–असबाब पहुँचाने का काम शुरु कर देना चाहिये। यह सोच कर उन्होंने शिन्दे सरकार के घर में जितना कीमती सामान था, उन सबका नीलाम शुरू किया। दरी–बिछौने तक ला–लाकर बाहर पटक दिए। अपने राजा के मूल्यवान वस्त्रों को ग्वालियर की प्रजा में से किसी ने भी खरीदने का साहस नहीं किया। उस समय कोंकण के नाटक वालों ने, जिनका वर्णन पहले किया जा चुका है, थोड़े दामों में उन राज वस्त्रों को खरीद लिया। नाटक के लिए इससे बढ़ कर सुन्दर वस्त्र उन्हें और कहाँ से मिल सकते थे। ज़री की बड़ी कीमती–कीमती साड़ियाँ पच्चीस–पच्चीस रुपये में खरीदीं; अस्तु। इस तरह शिन्दे सरकार की सारी दौलत अपने कब्जे में ली और हाथी, घोड़े और तोपें उनको घसीटने के लिए बैल भी ले लिये। शिन्दे की कुछ पल्टनें भी इनके साथ मिल गयीं। इस तरह बड़ी राजी–खुशी से श्रीमन्त राव साहब ने वहाँ अठारह दिन बिताये।

रोज मुक्त द्वार भोज होता था। शहर का प्रबन्ध बहुत अच्छा कर रखा था, मुरार में एक पल्टन तैनात थी। लेकिन अठारहवें दिन ग्यारह–बारह बजे के लगभग शहर में अचानक बड़ी खलबली मच गयी। खबर पड़ी कि आगरे में अंग्रेजी फौज ने आकर मुरार पर हल्ला बोल दिया है। उसी दम झाँसी वाली बाई, तात्या टोपे और राव साहब घोड़े पर सवार होकर एक फौज के साथ मुरार की ओर दौड़ गये। मुक्त द्वार के लिए ब्राह्मण लोग संकल्प छोड़ कर पत्तल में हाथ डाल ही रहे थे कि गड़बड़ मच गयी। कुछ ब्राह्मणों के सामने दक्षिणा रखी जा चुकी थी और कुछ के पास रखी जा रही थी। परन्तु उस समय दक्षिणा, भोजन आदि से भी बढ़ कर ब्राह्मणों को अपने प्राणों का लोभ था। सब लोग भराभर उठ खड़े हुये।

इधर मुरार में घमासान युद्ध छिड़ गया। झाँसी वाली रानी के

ग्वालियर चले गये थे। इसलिये शहर में 'हलद कुँकू" की जैसी भीड़–भाड़ और चहल–पहल होनी चाहिए थी, वैसी नहीं हुई। लोगों में उदासी छा रही थी। बाई साहब ने अपने मन में सोचा कि वह दिन सुदिन ही होगा, जब फिर 'हलद कुँकू' करने का समय आयेगा। इसलिये महालक्ष्मी की जो सेवा और वैभव है, उसे पूर्ण करना ही चाहिये। यह सोच कर उन्होंने राजमहल में 'हलद कुँकू' की बड़ी जबरदस्त तैयारी की। चार हण्डी चने एक छोटे से हौद में भिगो दिए गये। शुक्रवार का दिन निश्चय करके सबेरे शहर की तमाम स्त्रियों को बुलवा भेजा। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, मराठे–सब जातियों की स्त्रियों को आमन्त्रित किया गया और उन्हें 'हलद कुँकू', सुगन्धित पुष्प, चन्दन लेप, मिठाइयाँ, चाँदी की तश्तरियों में चने, गुलाब, इत्र और पान–सुपारी देकर सन्तुष्ट किया। दिन के दो बजे से रात के नौ बजे तक सब जातियों की स्त्रियाँ उत्तम प्रकार के वस्त्र और अलंकार से सज कर किले में ताँता बाँध कर आती रहीं। उसमें सरदार लोगों की स्त्रियाँ मियानों और पालकियों में बैठ कर, मालदार, चोबदार सिपाहियों के साथ शान से आती थीं। स्त्रियों को 'हलद–कुँकू' बाँटने के लिए लगभग सौ स्त्रियाँ खड़ी हुई थीं। लाखों फूल और मनों मिठाइयाँ बाँटी गयीं। दीवानखाने में एक मंजिल जितना ऊँचा गौरी का सिंहासन बनाया गया। उसकी सीढ़ियाँ उतरते–उतरते ज़मीन पर आती थीं और ऊपर ढेर का ढेर सामान सजा हुआ था। सब तरह के भोजन की जिन्स, फल–फूल, चाँदी का सामान, झाँसी का प्रसिद्ध पीतल का सामान, कागज़ के चित्र; तरह–तरह के मिट्टी के चित्र, लकड़ी का सामान, गमलों में फूलों के पौधे वगैरह सैकड़ों जिन्सें गौरी के सामने रखी गयी थीं। जहाँ–तहाँ किमख़ाब के पर्दे पड़े हुये थे और ज़री का चँदोवा बाँधा गया था। झाड़–फानूसों से तो सारा दीवानखाना चकाचौंध हो रहा था।

चैत बीता, बैशाख लगा। एक दिन शहर के दक्षिण की ओर मैदान में तम्बू गड़े दिखाई पड़ने लगे और इधर–उधर आग और रोशनी भी दिखाई देती थी। साँझ के समय शहर के चारों ओर

जगह–जगह पर तम्बू गाड़ कर पल्टनें उतरी हुई दिखायी दे रही थीं। चारों तरफ हलचल मच रही थी लेकिन; जैसा घेर दिखायी देता था, उसके हिसाब से मनुष्य कम थे। रात में भेदिये ने आकर बताया कि जैसा सरंजाम दिखता है, उस हिसाब से तो आदमी कम ही हैं। लड़वैये बहुत तो बहुत साठ हज़ार होंगे। बाकी सब बाज़ारी और लगुये–भगुये हैं। चढ़ाई हो गई है, यह देख कर रात में बाई साहब खुद किले पर और शहर की दीवालों पर घूम–घूम कर बन्दोबस्त करने लगीं। सब बुर्जों पर मोर्चे बाँध कर तोपें चढ़ा दी गयीं और वहाँ गोलन्दाज खड़े कर दिये गये। फाटकों के पास सिपाहियों की टुकड़ियाँ और उनके साथ एक–एक बहादुर और भरोसे के सरदार नियुक्त कर दिये गये।

दूसरे दिन सवेरे शहर की दीवार के पास मोर्चा बाँधने के लिए अंग्रेजों के बीस–पचीस सवार दौड़ते हुये आये और किले के पश्चिम की तरफ आकर दीवार की तरफ बढ़ने लगे; वैसे ही हमारी तरफ के दक्ष और होशियार गोलन्दाजों ने तोप में पलीता रख दिया। दस–पाँच मरे; बाकी भाग गये। इस तरह पहले दिन अंग्रेजी फौज शहर के चारों तरफ मोर्चे बाँधने का प्रयत्न करती थी; लेकिन; हमारे गोलन्दाज उनके चिथड़े उड़ा कर रख देते थे। दूसरे दिन भी इसी तरह मोर्चा बाँधने के लिए अंग्रेज पिले पड़ रहे थे लेकिन; मोर्चा न बँध सका। शहर में जो बड़े–बूढ़े लोग थे, उन्हें यह मालूम था कि शहर या किले पर कहाँ से मोर्चा लागू होता है लेकिन; यह जानकारी भी बहुत थोड़े लोगों को थी। अन्दर के षड्यन्त्र के कारण कहो या बाहर ही अंग्रेजों को इस बात का जानकार मिला, यह कहो––तीसरे दिन अंग्रेज मौके समझ गए। फिर रात होने पर उन्होंने सब ठिकाने साध कर साधारण मोर्चे बाँधे और चार घड़ी रात रहे किले के पश्चिमी बाजू पर अंग्रेजों की दक्षिण तरफ की गरनाली तोप चलने लगी। इधर वायव्य (पश्चिमोत्तर) दिशा की ओर भी तोप गोले बरसाने लगीं। शहर पर वार चलने लगे। यह देख कर बाई साहब को बड़ा दुःख हुआ और निराशा की पहली सीढ़ी से उनका पैर लगा। परन्तु वह ज़रा भी न डगमगायीं। जगह–जगह पर और अधिक बहादुर तैनात किए और

स्वयं भी खाने–पीने की चिन्ता छोड़ कर किले और शहर की दीवालों पर खपने लगीं।

शहर पर तोप के गोले शुरू होने से रैयत को बड़ा त्रास हुआ। एकाध गोला रास्ते में पड़ा तो फूट कर दस–बीस–पचास को घायल करता और दस–पाँच मारे जाते। किसी घर पर पड़ा, तो वह तो भस्म ही हो जाता था; उसके धक्के से आस–पास के छोटे घर खण्डहर होकर गिर पड़ते थे। आग लग जाती थी परन्तु; बाई साहब ने शहर में पानी के बम्बों का इन्तजाम बड़ा अच्छा कर रखा था। आग लगी नहीं कि बम्बे तुरन्त बुझाते थे। शहर में धन्धा–रोजगार बिल्कुल बन्द हो गया था। इधर–उधर आने–जाने से लोग घबराते थे।

केवल शहर में ही नहीं, किले के अन्दर भी यही हालत थी। किले में किसी छत पर गोला पड़ा तो वह फट कर बड़ी भयंकर आवाज करता था। छत टूटने से नीचे और आसपास के आदमी घायल हो जाते थे। फिर वही गोला दूसरी मंजिल का फर्श फोड़ कर तीसरी में गिरता था, फिर उसी तरह मनुष्यों का संहार होता था। इस तरह मंजिलों पर मंजिलें फोड़ता हुआ तोप का एक गोला अन्त में फूट कर चारों ओर बिखर जाता था। उसके अन्दर भरे हुए छर्रे, छुरियाँ, कीलें एकदम लाल होकर चारों ओर उड़ते हुए मनुष्यों का नाश करते थे। किला तोड़ने के लिए अंग्रेज सरकार ने बहुत गोले खराब किए। उन गोलों के बनाने में उन्होंने बड़ा खर्च किया। दो–एक गोले बिना फूटे ही रह गये। जब उन्हें वजन करके देखा, तो पक्के साठ–पैंसठ सेर के निकले। इस तरह अंग्रेजों के चतुर गोलन्दाजों ने उत्तम गोला–बारूद के समान से किले और शहर में त्राहि–त्राहि मचा दी परन्तु; बाई साहब ने यथाशक्ति गरीब–गुरबों का दुःख मिटाने का प्रयत्न किया। दक्षिणी ब्राह्मणों के लिए गणपति के देवालय में अन्नछत्र शुरू हुआ। दूसरे लोगों के लिए सदावर्त चालू किया। गरीबों को मटर, चने, मुरमुरे बाँटे जाने लगे।

इधर बाई साहब ने भी अपनी तरफ से अंग्रेजों की जबरदस्त नाकाबन्दी शुरू की। अंग्रेजों की तरफ के बहुत से लोग मारे गये।

चौथे दिन दोपहर में अंग्रेजों ने किले के दक्षिण बुर्ज की तोप बन्द कर दी। उस तोप पर कोई गोलन्दाज टिक ही न पाता था। लोगों में बड़ी हौलदिली फैल गयी। तभी पश्चिमी बुरुज वाले हमारे गोलन्दाज ने अपने मोर्चे की तोप दक्षिण की तरफ लगा दी, दुर्बीन से बेचूक निशाना साध कर तोप में पलीता लगाया और तीसरे धमाके में ही अंग्रेजों के उत्तम गोलन्दाज को ठंडा कर दिया। इस तरह दक्षिण की तोप फिर चालू करके उसने अंग्रेजों की तोप बन्द कर दी। गोलन्दाज की इस बहादुरी से प्रसन्न होकर बाई साहब ने उसे तत्काल अस्सी तोले चाँदी का एक तोड़ा बख्शीश में दिया।

आठवें दिन बड़ी प्रलय मची और बड़ा ही घनघोर युद्ध हुआ। बहादुर लोग ज़ोर–ज़ोर से एक–दूसरे को बढ़ावा दे रहे थे। बन्दूकों और तोपों की आवाज़ के सिवा और कुछ सुनायी ही न देता था। नरसिंघे, नगाड़े, बिगुल आदि बज रहे थे। धूल और धुआँ, बारूद, गोले, बन्दूकें और बाजों की आवाज़, मनुष्यों के चीत्कार सब मिल कर बड़ा ही भयंकर वातावरण उपस्थित कर रहे थे। अंग्रेज़ी फौजों ने बड़ी तबाही मचायी। रात में आकाश से तोपों के लाल–लाल गोलों की शहर पर मूसलाधार वर्षा हो रही थी। शहर में हज़ारों लोग मर गये; अपने प्राणों की रक्षा के लिये कोई गलियारों में, कोई पैखानों में, घरों के पीछे दौड़–दौड़ कर छिप रहे थे। परकोटे पर के सिपाही और गोलन्दाज एक के बाद दूसरे गिरते थे और उनकी जगह नये लोग खड़े किए जाते थे। बाई साहब को बड़ी मेहनत पड़ रही थी। चारों तरफ घूम–घूम कर सारा प्रबन्ध कर रही थीं। जहाँ ज़रा कमज़ोरी देखी, वहीं आदमी बढ़ाए। आदमियों को हिम्मत दी परन्तु; उन्हें बड़ी ही चिन्ता थी कि पेशवा की तरफ से मदद क्यों नहीं आ रही। इस चिन्ता ने उनको किंकर्त्तव्यविमूढ़ बना दिया। अन्त में लालू भाऊ देंकरे और भैया उपासने ने सलाह दी, कि राव साहब पेशवे की ओर से जल्दी मदद आये, इसलिए गणपति के मन्दिर में सौ ब्राह्मणों को अनुष्ठान पर बैठा देना चाहिए। उसके लिये तुरन्त ही सब प्रबन्ध हुआ और उससे बाई साहब को कुछ आश्वासन मिला। कई दिन से चूर–चूर हो रही थीं और उस दिन तो उन्हें साँस

लेने का भी अवकाश नहीं मिला। इसलिए दीवानखाने में जाकर ज़रा देर के लिए पड़ रहीं। वैसे ही एक भयंकर स्वप्न देखा। देखती क्या हैं कि एक गौरवर्ण की मध्यम वयस की सुवासिनी रूपवती स्त्री खड़ी है। उसकी नासिका सीधी, कपाल प्रशस्त, नेत्र काले और विशाल, शरीर पर मोती के अलंकार, लाल रंग की साड़ी और रेशमी चोली पहने हुए आँचल से कमर को कस कर किले के बुर्ज पर खड़ी है और बड़ी कठोर मुद्रा के साथ तोप के लाल–लाल गोले फैला रही है। गोले फैलाते–फैलाते उसके हाथों में काले–काले ठिक्कर पड़ गए हैं। बाई साहब को दिखा कर उसने कहा––"मैं ही यह गोले फैला रही हूँ।" स्वप्न देखते ही बाई साहब अचकचा कर उठ बैठीं और सबको यह स्वप्न सुनाया। सभी को आश्चर्य हुआ।

इधर कालपी से तात्या टोपे पन्द्रह हज़ार फौजें लेकर निकला और डबल कूच करता हुआ झाँसी पहुँचा। रातोरात मोर्चा बाँध कर उसने तोपों में पलीता लगाया। इधर कप्तान साहब भी अंग्रेजी फौज लेकर उससे लड़ने के लिए आ धमका। वह लड़ाई का दसवाँ दिवस था। झाँसी के लोग इस लड़ाई पर ही झाँसी के भाग्य का निर्णय समझते थे। सब लोग युद्ध देखने के लिए परकोटे की दीवार पर आकर जम गये। दोनों ही ओर के सिपाही अपनी जान होम कर लड़ रहे थे। किसी को भी अपना भान नहीं रहा। आमने–सामने की लड़ाई थी, प्यादे से प्यादा, सवार से सवार जूझ रहा था। बिगुल, नरसिंघों, बन्दूकों, तोपों इत्यादि की आवाज हवा में धुन्ध–सी बन कर छा गयी थी। बाई साहब और उसके सरदार लोग दुर्बीन लगा कर देख रहे थे। परन्तु झाँसी के दुर्भाग्य से कहो या तात्या टोपे की अकुशलता से कहो या हिन्दी सिपाहियों के नादान और अशूर होने से कहो, तात्या टोपे की फौज टूटने लगी। सिपाही लोग भागने लगे। अंग्रेजी फौजों ने मोर्चों पर से तोपें निकाल कर भागने वालों पर निशाना साधा। रिसाले सवारों ने एक दम हल्ला बोल दिया। यह देख कर स्वयं तात्या टोपे भी चौबीस पने और छत्तीस पने की तोप वहीं छोड़ कर मैदान से भाग गया। विजय मिलने से अंग्रेजों की हिम्मत दुगनी–चौगुनी हो गयी। उन्हें लड़ाई का सामान भी मिला।

झाँसी वालों में हाहाकार मच गया। सब लोग दुःख, भय और निराशा से टूट गये।

परन्तु निराशा की शक्ति भी कुछ विलक्षण ही होती है। सिपाहियों को अब यह विश्वास हो गया था कि झाँसी अंग्रेजों के हाथ लगेगी और वे हमारे ऊपर जरा भी दया न करेंगे। इस विचार से उनका हौसला और दूना हो गया। बाई साहब ने सब सरदारों को इकट्ठा करके कहा कि आज तक झाँसी लड़ी, तो कुछ पेशवा के बल पर नहीं और आगे भी उसे किसी की मदद की ज़रूरत नहीं। ऐसा निश्चय करके सरदार लोग और स्वयं बाई साहब परकोटे की दीवालों पर फिर से मेहनत करने लगीं। उसी दिन रात में अंग्रेजी गोलन्दाजों ने फिर भयंकर हमला किया। शहर और किले पर लाल–लाल गोलों की झड़ी लगा दी। किले के सब लोग रात भर जागते हुए बैठे रहे।

रात गयी और युद्ध का ग्यारहवाँ दिवस आ पहुँचा। बाई साहब तलवार बाँधे हुए चारों ओर सबको हिम्मत बँधा रही थीं। गोलन्दाजों को बख्शीशें दी गयीं। जो तोपें बन्द हो गई थीं, वे फिर शुरू हुईं। अंग्रेजों ने अपनी सारी गरनाली तोपें किले पर ही लगा दीं। तब तो महलों में हाहाकार मच गया। इतने में ही एक दिगन्तव्यापी सुस्वर ध्वनि सुनाई पड़ी। देखा तो दूसरी मंजिल पर गणपति में जहाँ नवरात्रि में कथा–कीर्तन इत्यादि बड़े हौसले से किए जाते थे और जो एक तरह से शीशमहल ही था, वहाँ गोला पड़ा था। उसमें चारों ओर लखनऊ के आरसे (शीशे) लगे हुए थे। छत भी शीशे की बनी हुई थी। झाड़, फानूस इत्यादि अनेक तरह के मूल्यवान काँच के सामान से वह कमरा ठसाठस भरा हुआ था। उसके ऊपर तीन मंजिलें और थीं। गरनाली तोप का गोला भयंकर आवाज के साथ हर मंज़िल को फोड़ता हुआ कीलें और छर्रे उड़ाता हुआ इस शीशमहल में सुस्वर ध्वनि के साथ आकर गिरा था। काँच का एक भी सामान न बचा। चार मनुष्य मरे और नौ जख्मी हुये।

उस दिन महलों पर ही अंग्रेजी तोपों की शनि–दृष्टि थी; परन्तु ख़ास महल को कोई नुकसान नहीं पहुँचा। बादशाही जमाने का चूने

से बना हुआ मजबूत महल कुछ यों ही टूट सकता था? जहाँ गोला पड़ता, वहाँ उतना बड़ा छेद हो जाता। यों दो–तीन छतों में भंबक हो जाते थे और गोला नाकाम हो जाता था। परन्तु ऐसा नुकसान भी कुछ कम न हुआ था। महल के हरेक दालान पर गोले पड़ने लगे।

इस तरह लगातार ग्यारह दिन तक लड़ाई चली। फिर भी, शाबाश है उस स्त्री को ! उस रात को रोज़ की तरह बाई साहब शहर और किले पर गश्त लगा कर जब बन्दोबस्त कर रही थीं; इतने में ही एक भेदिये ने आकर खबर दी कि दो–ढाई लाख रुपयों का गोला–बारूद खर्च करके भी अंग्रेज सरकार को जय मिलती नहीं दिखायी देती। उनका गोला–बारूद भी अब चुक गया है। इसलिये कल पहर भर लड़ाई लड़ने के बाद उनका लश्कर उठ जायेगा। यह सुन कर बाई साहब को अपार आनन्द हुआ। उनके चेहरे पर और भी दमक आ गयी और उनकी शक्ति और हिम्मत दोगुनी हो गयी। उस रात को दो बजे के लगभग निश्चिन्त होकर वह गहरी नींद में सो गयीं। लेकिन बाई साहब के ग्रह अच्छे नहीं थे। लगभग पौ फटने के समय शहर के दक्षिण बाजू की तोप एकाएक बन्द पड़ गयी। यह खबर लेकर एक आदमी आया और बाई साहब को जगा कर उसने सारा हाल कहा। सारी हकीकत उससे सुन कर सबके पेट में पानी हो गया और सबके प्राण भीतर ही भीतर घुटने लगे। अट्ठासी पहर तक बड़ी बहादुरी के साथ लड़ने के बाद अन्त में अंग्रेजों ने शहर को सर कर ही लिया।

बाई साहब ने जैसे ही हकीकत को समझा, वैसे ही सहस्र बिच्छुओं के डंक मारने के समान उन्हें दुःख हुआ। चेहरे की आब उतर गयी। अक्ल गुम्म हो गयी। सोने से पहले जो खबर सुनी थी, वह क्या थी ! और अब यह खबर ! इसका अर्थ क्या है? भय, दुःख और आश्चर्य से चित्त ऐसा उद्विग्न हुआ कि क्या करना चाहिए, उन्हें सूझता ही न था ! बाहर आकर शून्य दृष्टि से वे दक्षिण दिशा की ओर देखने लगीं, जहाँ से हजारों गोरे सिपाही बढ़े चले आ रहे थे। परन्तु बाई साहब साधारण जनता की तरह कुछ नादान थोड़ी ही थीं, भय और विचार–शून्यता का क्षण दूर गया। तुरन्त ही बाई

साहब को शूरत्व का आवेश आ गया। पन्द्रह सौ विलायती अर्थात् मुसलमान अरब, जो बहुत दिनों से उनके यहाँ नौकर थे, उन्हें लेकर तलवार खींच कर वे तुरन्त ही किले से नीचे उतरीं और बड़े दरवाजे से दक्षिण की ओर चल दीं। गोरे लोग शहर में आ गये थे। उनकी तलवारें भी म्यानों से बाहर निकल आयी थीं। सबके पीछे से चलते हुए बाई साहब सेना के मध्य से होकर तलवार लिये आगे बढ़ रही थीं। गोरे और विलायती लोगों की तलवारों में गाँठ पड़ते ही चारों ओर भीषण–दृश्य उपस्थित हो गया कि उसकी उपमा केवल महाभारत के युद्ध से ही दी जा सकती है। सौ तक गिनती गिनने में देर लगेगी, परन्तु जोश में भरे हुए विलायतियों को सैकड़ों गोरे मारने में उतनी भी देर न लगी। बाकी जो बचे थे, वे शहर में इधर–उधर भागकर घरों और पेड़ों की आँड़ से बंदूकें तानने लगे। पीछे से जो गोरे लोग आ रहे थे, उन्होंने भी तलवार न चला कर दूर से ही गोलियाँ मारनी शुरू कीं। उस समय बाई साहब के साथ एक पचहत्तर वर्ष का वृद्ध और पुराना सरदार था। वह आगे आकर बाई साहब का हाथ रोक कर कहने लगा, "महाराज, इस समय आपको आगे जाकर गोली का शिकार होना व्यर्थ है। गोरे लोग इमारतों की आड़ लेकर गोलियाँ चला रहे हैं। सैकड़ों गोरे शहर के अन्दर आ गये हैं। इसलिये शहर के सब फाटक उन्होंने खोल दिए हैं। इस समय लड़ने से कुछ हासिल नहीं। आप किले में जाकर दरवाज़ा बन्द करके फिर कोई युक्ति सोचें। हमें समय को फिर से लौटा लाना है।"

यह कह कर उसने बाई साहब को वापस भेज दिया और हाँक मार कर विलायतियों से भी लौटने को कहा, सब लोग किले में पहुँच कर फाटक बन्द करके बैठ गये।

इधर चारों ओर के फाटकों से गोरे अन्दर आने लगे और विजन करना शुरू किया। पाँच बरस से लगा कर अस्सी बरस तक जो भी पुरुष दिखा, उसे गोली या तलवार से पार उतार दिया। शहर के एक भाग में आग भी लगा दी। गोरे लोग घरों में घुस कर मनुष्यों की हत्या और सोने–चाँदी की लूट करने लगे। उनके घरों में घुसते

था। उस घोड़े पर बैठ कर पीछे रेशमी दुपट्टे से अपने बारह वर्ष के दत्तक पुत्र को बाँध कर और साथ में केवल एक रुपये की रेजगारी लेकर महारानी बाहर निकलीं।

इस तरह सब तैयारी होने पर 'जय शंकर' की हाँक मार कर मण्डली किले से नीचे उतरी और बीच शहर से होकर दरवाजे से बाहर निकली। सैकड़ों लोग बाई साहब का अन्तिम संदेश लेने के लिए रास्ते पर खड़े थे। उस समय अंग्रेजों की ज़रा भी परवाह न करते हुए मौत के मुँह में हाथ देकर झाँसी की प्रजा अपनी महारानी से मिलने के लिए खड़ी हुई थी। उन्हें देख कर यह पक्का भरोसा हुआ कि ये वीर अपनी जान पर खेल जायेंगे परन्तु महारानी पर आँच न आने देंगे। जैसे ही बाई साहब शहर से निकलीं कि अंग्रेजों को खबर मिली। तुरन्त ही हल्ला–गुल्ला करके सबको सावधान किया और तोप चालू की। बाई साहब के पास बन्दूक थी। वे उसे दागती हुई घोड़ा फेंक कर भागीं। उस हुल्लड़ में दोनों तरफ के बहुत से लोग कट गए। जो बचे वे अँधेरे में रास्ता भटक कर जहाँ सींग समाया, वहाँ भागे। चारों ओर सवार ही सवार थे। उसमें अंग्रेजों को यह पता नहीं लग पाया कि बाई साहब का घोड़ा कौन–सा है। बाई साहब ने जो घोड़ा फेंका तो वह पल भर में अंग्रेजी फौज़ों का घेरा तोड़ कर उन्हें बहुत पीछे छोड़ता हुआ आगे निकल गया। उनके साथ ही दूसरे घोड़े पर एक दासी थी। इस तरह बाई साहब और उनकी दासी दुश्मन के डेरे पार करके कालपी के रास्ते पर चल दीं। एक कोस तक अंग्रेजों ने इनका पीछा किया परन्तु; उन्हें बाई साहब के पैरों की धूल भी न मिली। रात का समय था, अँधेरे में कुछ सूझा नहीं। निराश होकर लौट आये परन्तु; इसमें भी अंग्रेजों को कुछ धोखा–सा ही रहा। कभी सोचते कि बाई साहब कहीं निकल कर जा नहीं सकतीं; यहीं कहीं होंगी। इसलिये बड़ी देर तक अपनी बारूद खराब करते रहे। सबेरा होने पर लाशों में देखा तो सब सिपाहियों की ही थीं; उन लोगों का कहीं भी पता न था।

इधर बाई साहब सवेरा होते–होते झाँसी मुलुक की सरहद पर एक गाँव में जा पहुँची। वहाँ उन्होंने अपने दत्तक पुत्र को पीठ से

खोल कर महालकरी के यहाँ भोजन कराया। महालकरी से सब हाल कहा, फिर आप मुँह में एक दाना भी न देकर लड़के को पीठ से बाँध कर कालपी की ओर चल पड़ीं। दिन भर बिना रुके घोड़े दौड़ते ही रहे और आधी रात के लगभग कालपी जा पहुँचे। चौबीस घंटे बिना खाए–पिए बाई साहब ने पीठ से बोझ बाँध कर भर दाँव भागते हुए घोड़े पर काट दिए। इससे उस स्त्री की शक्ति, हिम्मत और धीरज का कमाल दिखलायी पड़ता है। अस्तु !

रात बहुत हो चुकी थी, इसलिए गोदाम पहुँच कर बाई साहब ने श्रीमन्त को अपने आने की खबर नहीं की। सवेरे प्रातः कर्मों से निपट कर यह विचार कर रही थीं कि पेशवा से किस तरह मिला जाय, स्त्री–धर्म के अनुसार वे अस्पर्श दशा को प्राप्त हुईं। उस समय बाई साहब के अन्तःकरण में पहले से भी दस गुना अधिक दुःख हुआ—–स्त्रियों ने यदि अति शौर्य भी किया, तो उसका उपयोग ही क्या? मौके पर घात करने वाला उनका शारीरिक–धर्म उनके साथ लगा हुआ है ही। आग में घी इस प्रकार से पड़ा कि बाई साहब के पास स्त्रियों का एक भी वस्त्र नहीं था। नए वस्त्र खरीदने के लिए पास में पैसा भी नहीं था। केवल एक रुपये की रेजगारी और हाथ में हीरे की एक अँगूठी ही थी। दासी के पास भी कोई साधन न थे। अब किसका मुँह देखा जाय? पेशवा के यहाँ कोई स्त्री नहीं, सब पुरुष ही थे; उनके यहाँ जाकर यह सब कहने का विचार करते ही उनके प्राणों पर बन आती थी। हर ! हर ! इस विपत्ति–प्रसंग में अबला के मनोधर्म के अनुसार ही उनकी आँखों में आँसू बहने लगे। दासी भी रोने लगी। तभी किसी तरह राव साहब को खबर लगी। उन्होंने तुरन्त ही तात्या टोपे को बाई साहब के लिए योग्य बन्दोबस्त करने के लिये भेजा। तात्या ने बाजार से कीमती लुगड़ी और मुगटा लाकर दिया। भोजन के लिये सोने–चाँदी के बर्तन, बिस्तर–बिछौना, तम्बू–कनाती, सब उचित प्रबन्ध करके पहरे पर सिपाही तैनात किये। फिर लक्ष्मीबाई ने तात्या टोपे और राव साहब से मिल कर सब हाल–हकीकत कही। बाई साहब के घोड़े ने अच्छी नौकरी बजायी थी परन्तु; गोदाम पर पहुँच कर वह थक कर गिर पड़ा। बाई

साहब उसे बहुत ही चाहती थीं। दूसरे दिन सात–आठ मजूरों ने मिल कर घोड़े की दोपहर तक मालिश की। घोड़ा फिर उठ कर चंगा हो गया।

इस तरह मृत्यु के मुँह से छुटकारा पाकर बाई साहब अपनी मित्र मण्डली में जा मिलीं; परन्तु झाँसी की याद उनके मन को कचोटती ही रही। कालपी में तीन दिन लड़ाई चली। पेशवा की फौजें लड़ाई के लिए बेकार हो चुकी थीं। दिल्ली, लखनऊ, झाँसी वगैरह में अंग्रेजों की विजय होने से गदर वाले बहुत कुछ निराश हो चुके थे। इसलिए बहुत से पुराने तजुर्बेकार पल्टनी लोग अपने प्राणों के भय से पल्टनें छोड़ कर चले गए थे। अंग्रेज सरकार ने उनके नाम पहले से ही जगह–जगह जाहिरनामे में लगा रखे थे। इसलिये भेष बदल कर वे लोग दूसरे काम–धन्धे करने लगे। जो नये लोग रखे गये थे, वे बिलकुल नौसिखिंये थे। उन्हें ढंग की क़वायद भी न आती थी; इसलिये टिकाऊ नहीं थे। इतना ही नहीं, गदर वालों की पल्टन के साथ अच्छे और दमदार लोग जब मिलने को राजी नहीं हुए, तो नये सिपाहियों, चोरों, लुच्चों और लुटेरों की भर्ती होने लगी। उनका लक्ष्य लड़ाई न होकर लूट अधिक थी। तीसरे दिन जब उन सिपाहियों को लगा कि जीत अंग्रेजों की होगी और पेशवा टूटेंगे, तो वे लोग सैकड़ों की तादाद में लड़ाई का मैदान छोड़ कर शहर में जा घुसे। उन्होंने दंगा, लूट, अनीति करना शुरू कर दी। अच्छे–अच्छे घरों को फोड़ कर घुस गये और खूब लूट मचायी। चीनी के व्यापार के लिए प्रसिद्ध कालपी की सड़कों पर चीनी की बिछावत बिछ गई। अनाथ स्त्रियों की बड़ी ही दुर्दशा की गयी। ये लोग लूट–पाट कर ही रहे थे कि इतने में अंग्रेज लोग सारे मोर्चे जीत कर शहर में आ गये। उन्हें देखते ही ये डाकू काले सिपाही जहाँ सींग समाया, उधर ही भाग निकले। सैकड़ों की हत्या हुई। तात्या टोपे, राव साहब (नानाराव पेशवा) और झाँसी वाली रानी लक्ष्मीबाई ने अपना रंग फीका देख कर पहले ही जंगलों की राह ले ली थी।

कालपी में पेशवा की हार होने पर वे सब ग़दर वाली पल्टनें ग्वालियर की ओर उलट पड़ीं। मुरार में शिन्दे सरकार की फौजी

छावनी थी। उन्होंने वहाँ जाकर मोर्चा बाँधा और शिन्दे को कहलाया कि वे या तो खर्च के लिये गदर की पल्टनों को चार लाख रुपये दें, नहीं तो मैदान में आयें। उस पर दिनकर राव राजवाड़े दीवान ने जवाब दिया कि लड़ाई के लिये तैयार हैं। जयाजी महाराज शिन्दे, उनके दीवान आदि मुड्ड लोग थे। सब फौज़े लेकर मुरार नदी के पार पहुँचे। शिन्दे की तरफ के बहुत से पल्टनियों ने यह कहा कि हम लड़ाई का ठाट तो बाँध देंगे लेकिन; पेशवा पर गोली नहीं चलायेंगे क्योंकि वे आपके और हमारे दोनों के मालिक हैं। इतने में ही गदर वाली फौज की तरफ से तोप में पलीता दे दिया गया और मारू बाजे बजने लगे।

शिन्दे और दीवान ने अपनी ओर के गोलन्दाजों को बहुत–बहुत कहा मगर उन्होंने जवाब दे दिया कि हम नमकहरामी नहीं करेंगे, पेशवा पर गोले नहीं दागेंगे। शिन्दे राजा और दीवान दोनों ही घोड़े से उतर पड़े और अपने हाथों तोप में बत्ती लगायी। परंतु; तोपों के अंदर तो बाजरे की थैलियाँ भरी हुई थीं। तब तो शिन्दे राजा और दीवान राजवाड़े हक्का–बक्का हो गये और तुरन्त ही घोड़े पर सवार होकर आगरे का रास्ता पकड़ा। इधर लड़ाई की चुट–पुट तो हो ही चुकी थी, सौ–दो सौ आदमी मारे काटे गये कि इतने में शिन्दे और उनके दीवान के भाग जाने की खबर चारों ओर फैल गयी। शिन्दे के सिपाही यह सुनते ही इधर–उधर भाग खड़े हुये। लड़ाई बन्द हो गयी। श्रीमन्त पेशवा की ओर शहनाई बजने लगी और उन्होंने लश्कर की ओर कूच किया।

शहर के राजमहलों में पहले किसे भेजा जाये, श्रीमन्त रावसाहब इसका विचार कर रहे थे। तभी झाँसीवाली रानी ने स्वयं वहाँ जाने की आज्ञा माँगी। राव साहब ने कहा कि शत्रु का शहर है, महलों में बड़े धोखे होंगे। बंदोबस्त करके जाना। तब बाई साहब दो सौ सवारों को लेकर बड़े गंभीर भाव से शहर में आयीं। सराफे और प्रमुख बाजारों से सवारी चली आ रही थी। बाई साहब के सम्मान में आगे बंदूकों से हवा में फैर करते चलते थे। इस तरह, सवारी महलों में पहुँची। महल के पीछे वाले हिस्से के लोग अभी नहीं गये थे।

कारण कि वे सब वायजा बाई साहब शिन्दे के कारकुन थे। उन्होंने जाकर कहा कि इधर वायजा बाई साहब रहती हैं, अपने लोगों को इधर आने से रोक दीजिये। झाँसीवाली रानी ने तुरन्त ही अपने लोगों को ताकीद कर दी कि जहाँ–जहाँ बाई साहब के ताले पड़े हों, उधर तुम लोगों के जाने का कोई काम नहीं। वायजा बाई साहब चार–पाँच दिन पहले महल छोड़ कर परेड की तरफ चली गयी थीं।

झाँसी वाली रानी ने महल में जाकर पहले तो वहाँ की सब चीजें अपने ताबे में ले लीं और फिर राव साहब और तात्या टोपे को खबर भेजी कि यहाँ सब ठीक है, आप चले आइये। तब राव साहब की सवारी बड़े ठाठ–बाट के साथ शहर के बड़े–बड़े बाजारों से होकर धीरे–धीरे आगे चलती हुई महलों में आयी। शिन्दे सरकार के मुनीमों और कारकुनों ने उनको भेंट दी। राव साहब ने कहा कि हम यहाँ ब्रह्मभोज कराना चाहते हैं। इसलिए कल से मुक्त द्वार भोजन का प्रबन्ध करो। बेसन के लड्डू और पकवानों के साथ एक–एक रुपया दक्षिणा बाँटी जाय। हम यहाँ जब तक रहेंगे, तब तक यह कायदा रोज चलेगा। मुनीमों ने हाथ जोड़ कर कहा कि महाराज के हुकुम के अनुसार ही सब सरंजाम हो जायेगा।

दूसरे दिन से मुक्त द्वार ब्रह्मभोज आरंभ हुआ। हर ब्राह्मण को एक–एक रुपया दक्षिणा मिलने लगी। महादजी बाबा शिन्दे ने अपना खजाना रखने की एक गुप्त जगह बनवायी थी, जो गंगाजली के नाम प्रसिद्ध थी। तब से शिन्दे सरकार का खजाना उसी में जमा होता था। राव साहब, तात्या टोपे और झाँसी वाली रानी ने गंगाजली का पता लगा कर उसे अपने अधिकार में ले लिया। सोना, चाँदी, मोती इत्यादि सब अर्थ देख कर तात्या टोपे ने प्रश्न किया कि जब महादजी बाबा के समय से यह गंगाजली भरती आ रही है तो इस समय इसमें उस हिसाब से ऐश्वर्य कम क्यों है? इस पर शिन्दे सरकार के बड़े खजांची ने कहा कि खर्च के वक्त खर्चा भी तो इसी में से निकाला जाता रहा है और कभी–कभी नास–नुकसान भी हुआ। यह सुन कर सबका समाधान हो गया।

अब ये सब बड़े–बड़े सरदार लोग इस सोच में पड़े कि अभी हम

लोग निर्भय तो नहीं हुये। राज के प्रबन्ध के लिए भी अपने पास अच्छी फौज नहीं। थोड़े दिनों में अंग्रेज यहाँ आ ही पहुँचेंगे और लड़ाई होगी। तब हमें जंगलों में जाना पड़ेगा, इसलिये जितना पैसा भी मिले, सब बटोरना चाहिये और यहाँ से पश्चिम में जहाँ कहीं भी पानी की अच्छी व्यवस्था हो, वहाँ कुछ लोगों को तैनात करके यहाँ से सामान–असबाब पहुँचाने का काम शुरु कर देना चाहिये। यह सोच कर उन्होंने शिन्दे सरकार के घर में जितना कीमती सामान था, उन सबका नीलाम शुरू किया। दरी–बिछौने तक ला–लाकर बाहर पटक दिए। अपने राजा के मूल्यवान वस्त्रों को ग्वालियर की प्रजा में से किसी ने भी खरीदने का साहस नहीं किया। उस समय कोंकण के नाटक वालों ने, जिनका वर्णन पहले किया जा चुका है, थोड़े दामों में उन राज वस्त्रों को खरीद लिया। नाटक के लिए इससे बढ़ कर सुन्दर वस्त्र उन्हें और कहाँ से मिल सकते थे। ज़री की बड़ी कीमती–कीमती साड़ियाँ पच्चीस–पच्चीस रुपये में खरीदीं; अस्तु। इस तरह शिन्दे सरकार की सारी दौलत अपने कब्जे में ली और हाथी, घोड़े और तोपें उनको घसीटने के लिए बैल भी ले लिये। शिन्दे की कुछ पल्टनें भी इनके साथ मिल गयीं। इस तरह बड़ी राजी–खुशी से श्रीमन्त राव साहब ने वहाँ अठारह दिन बिताये।

रोज मुक्त द्वार भोज होता था। शहर का प्रबन्ध बहुत अच्छा कर रखा था, मुरार में एक पल्टन तैनात थी। लेकिन अठारहवें दिन ग्यारह–बारह बजे के लगभग शहर में अचानक बड़ी खलबली मच गयी। खबर पड़ी कि आगरे में अंग्रेजी फौज ने आकर मुरार पर हल्ला बोल दिया है। उसी दम झाँसी वाली बाई, तात्या टोपे और राव साहब घोड़े पर सवार होकर एक फौज के साथ मुरार की ओर दौड़ गये। मुक्त द्वार के लिए ब्राह्मण लोग संकल्प छोड़ कर पत्तल में हाथ डाल ही रहे थे कि गड़बड़ मच गयी। कुछ ब्राह्मणों के सामने दक्षिणा रखी जा चुकी थी और कुछ के पास रखी जा रही थी। परन्तु उस समय दक्षिणा, भोजन आदि से भी बढ़ कर ब्राह्मणों को अपने प्राणों का लोभ था। सब लोग भराभर उठ खड़े हुये।

इधर मुरार में घमासान युद्ध छिड़ गया। झाँसी वाली रानी के

गोली लगी पर, वह मानी नहीं। दूसरा तलवार का करारा हाथ उनकी जाँघ पर पड़ा। उस समय वे घोड़े से गिरने लगीं। तात्या टोपे ने चट से उन्हें सँभाल कर घोड़ा आगे बढ़ा दिया। बाई साहब की मृत देह को एक जगह रख कर लोगों ने उनका दहन किया। अंग्रेजों की जीत रही। गदर वाले इधर–उधर भागने लगे। इस प्रकार रणांगण में उस महान वीरांगना देवी स्वरूपिणी स्त्री ने मृत्यु पाकर स्वर्ग को जीता, परन्तु गदर वालों की ओर सदा उत्साह और शूरता से चमकने वाली प्रत्यक्ष वीरश्री निस्तेज हो गयीं।[1]

❑❑❑

---

१. श्री सुन्दरलाल के "भारत में अंग्रेजी राज" (जिल्द तीसरी, पृष्ठ १६१७–१८) में लक्ष्मीबाई के स्वर्गलाभ का बड़ा ही जानदार वर्णन किया गया है, "रानी अपनी तलवार से मार्ग काटती हुई आगे बढ़ीं। अचानक एक गोली उसकी सहेली मन्दरा को आकर लगी। मन्दरा घोड़े से गिर कर समाप्त हो गयी। रानी ने तुरन्त मुड़ कर अपनी तलवार से उस गोरे सवार पर वार किया, जिसकी गोली ने मन्दरा को समाप्त किया था। सवार कट कर गिर पड़ा। रानी फिर आगे बढ़ी। सामने एक छोटा–सा नाला था। एक छलांग के बाद अंग्रेज सवारों का रानी लक्ष्मीबाई को छू सकना असंभव हो जाता किन्तु; दुर्भाग्यवश रानी का घोड़ा नया था। पिछले संग्रामों में उसके कई प्यारे घोड़े उसके नीचे समाप्त हो चुके थे। घोड़ा बजाय छलाँग मारने के नाले के इस पार चक्कर खाने लगा। अंग्रेज सवार अब और अधिक निकट आ पहुँचे। रानी चारों ओर से घिर गयी। रानी उस समय बिलकुल अकेली रह गयी। उसने अकेले ही उन सबका अपनी तलवार से मुकाबला किया। एक सवार ने पीछे से आकर रानी के सर पर वार किया। सिर का दाहिना भाग अलग हो गया, दाहिनी आंख भी निकल कर बाहर आ गयी। फिर भी लक्ष्मीबाई घोड़े पर टूटी हुई तलवार चलाती रहीं। इतने में एक वार रानी के छाती पर हुआ। सर और छाती दोनों से खून का फव्वारा छूटने लगे। बेहोश होते हुए रानी ने अपनी तलवार से उस गोरे सवार को, जिसने सामने से रानी पर वार किया था, काट कर गिरा दिया किन्तु; इसके बाद लक्ष्मीबाई की भुजा में और अधिक शक्ति न रह गयी। **(अ. ला. नागर)**



बेगम हज़रतमहल

बेगम हज़रतमहल

लगभग सवा सौ बरस पहले न जाने किस अभाव के साये में पलने वाली एक पाँच–सात बरस की नन्हीं–मुन्नी का चाँदनी सा; गोरा–चिट्टा, छड़ीला–बदन और बड़ी–बड़ी आँखों की कुदरती–जादुई चितवन किसी शातिर बुर्दाफ़रोश की नज़रों में लम्बे मुनाफ़े का माल बन कर चढ़ी और वह उड़ा ली गयी। यह भी हो सकता है कि किसी जुआरी–शराबी बाप ने उसे खुद ही बेचा हो। ग़रीबी में भी माँ–बाप अक्सर अपनी सुंदर–सलोनी बेटियों को कुटनियों के हाथों यह सोच कर बेच देते थे कि जो किसी रईस के मन चढ़ गई, तो "लक्खी चबूतरे" पर बैठ कर दूधों कुल्ले किया करेगी।

बहरहाल, शुरू का हाल मुंशी चित्रगुप्त के रोजनामचे में कहीं दर्ज़ हो तो हो, हमारी दुनिया में अब उसका कोई हवाला नहीं मिलता। इतना तो पता है कि लखनऊ शहर की दो मशहूर कुटनी बहनों, अम्मन और इमामन ने उस उड़ा ली गयी बच्ची को शाह–ए–अवध मिर्ज़ा अमजद अली शाह के छोटे राजकुमार मिर्ज़ा वाजिद अली खाँ के हाथों बेचा था। उस समय उसकी उम्र १२–१३ बरस की रही होगी। किश्ती–ए–इश्क़ एवं हुस्न के अलबेले खेवइया रंगीन मिजाज़ शायर शाहजादा मिर्ज़ा वाज़िद अली 'अख़्तर' ने अपने महलों में एक परीख़ाना भी क़ायम किया था। अपनी प्यारी परियों के लिए वह नाच और गानों से लबरेज़ नाटक लिखते। नये–नये नाच ईजाद करते, ठुमरियां रचते और कभी–कभी उनके साथ नाच और गाने में खुद भी शरीक़ हो जाया करते थे। नृत्य की शिक्षा उन्होंने कथक कुल गुरु महाराज बिन्दादीन के पिता, उस्तादों के उस्ताद महाराज ठाकुर प्रसाद से पायी थी।

पद्मिनी महक़परी

अम्मन और इमामन ने जो इस अधखिली कली को शाहज़ादा वाज़िद अली के हुजूर में पेश किया, तो इसके हुनर, लजाई जादुई

चितवन के रसबस होकर उन्होंने इसका नाम महक़परी रख दिया। बहुत जल्दी ही महक़परी की महक़ शाहज़ादे के तन–मन में यूं बस गयी कि नसीब के सितारे उसे झुक के सलाम करने लगे। वह माँ बनी। शाही ख़ानदान–ए–मंसूरिया को एक नया लख़्तेजिग़र मिला। महलों में बधावे बजे, ग़रीबों को ख़ैरात मिली और महक़परी को बाइज़्जत परी से पत्नी का दर्ज़ा मिला। उसके ससुर शाहे अवध ने उसे इफ़्तिख़ारुन्निसा बेगम और उसके बेटे अपने पोते मिर्ज़ा रमजान अली खाँ को शाहजादा बिरजीसक़दर ख़िताब दिया। बिरजीसक़दर वाजिद अली खाँ की पहली सन्तान न थे। दूसरी बेग़मों से उन्हें तीन बेटे और शायद कुछ बेटियाँ भी; पहले ही हो चुकी थीं। मगर इफ़्तिख़ारुन्निसा बेग़म का बेटा अपने पिता के लिए भी नया नसीबा लाया था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साहबाने आलीशान को शाह–ए–अवध के युवराज शाहज़ादा मिर्ज़ा मुस्तफ़ा अली खाँ फूटी आँखों न सुहाते। वह अंग्रेजों से चिढ़ते और अंग्रेज उन से। इसीलिये कुछ अरसे के बाद अंग्रेजों ने नवाब अमजद अली शाह को इस बात के लिए मजबूर किया कि अवध के तख़्तोताज का वारिस मिर्ज़ा मुस्तफ़ाअली खाँ के बजाय मिर्ज़ा वाजिद अली को बनाया जाये। अपने ही घर में बादशाह की एक न चली और अंग्रेजों की मनचीती हो के रही। बड़े भाई मिर्जा मुस्तफ़ा अली खाँ ताज न पहन सकने की वजह से आजीवन नंगे सिर रहे। छोटे भाई मिर्ज़ा वाजिद अली खाँ सन् १८४७ में अमजद अली शाह के स्वर्गवास पर शाहे अवध बने। इस खुशी में उन्होंने अपनी चहेती इफ़्तिख़ारुन्निसा बेगम को नवाब हजरत महल का खिताब दिया।

तक़दीर का गुल

तक़दीर अगर यों ही गुल खिलाती चली जाती, तो आज हम नवाब हजरत महल साहबा का किस्सा शायद किसी और ही तरह से बयान करते लेकिन; बसन्त के बाद पतझड़ के दिन आते ही हैं। तख़्तोताज के मालिक बनने के बाद अवध के कन्हैया का दिल दूसरी गोपियों ने लूट लिया। एक नयी चहेती 'परीपैकर हजरत महल' की इज्जत अब हजरत महल से ज्यादह होने लगी।

हजरत महल से परीपैकर हजरत महल तक आने में हजरत के दिले–आशिक को जिन्दगी के एक नए हुस्न के दीदार भी हुए थे और कुछ दिनों तक वह उसका दीवाना भी रहा। गद्दीनशीन होने के बाद वाजिद अली शाह कुछ महीनों तक बड़ी मेहनत और लगन के साथ अपना राज–काज संभालते रहे। ग़रीब गुहार अब सुनी जाने लगी। वाज़िद अली शाह को गरीब प्रजा ने 'जाने–आलम' पुकारना शुरू किया। हुसैनाबाद के मैदान में खुद घोड़े पर सवार हो कर सेना से परेड कराते थे। पूरी जिन्दगी ही बदल गयी थी।

अंग्रेजों को यह अच्छा न लगा। सुनते हैं कि अली नकी खाँ की मार्फत उन्हें कोई ऐसी दवा भी दी गयी, जिससे कि जानेआलम अबस मदन–मस्त हो कर अपनी नयी–पुरानी माशूकों के लिए महज 'पिया जाने आलम' भर रह गये। उन का आलम अब उन का जनानखाना ही बन गया। अब फिर से वही नाच–गाने, वही इश्कोरंग। आज इस पर फिदा है, कल उस से मुँह फूला है, परसों उस के यहाँ गजल लिख कर भेजी है, बस यही तमाशे दिन–रात होते रहते। अंग्रेज बराबर सताते रहे। दिल के दर्द के दौरे पड़ने लगे। बुरा हाल था। मुसाहब लोग भोले शायर तबियत हौलदिल रईस को कभी परियों–जिन्नातों के शाह सुलैमान से मिलवा के अंग्रेजों पर जादू करवाते और रकमें लूटते, कभी कोई और तरकीब करते थे। बौड़मपन की हद तक माले–रईस को ठगने के लाखों बहाने थे। इन बहानों में कभी–कभी हरम की पालिटिक्स भी उलझ जाती थी।

पीठ की साँपिन

एक बार पिया जाने आलम अपनी माता बेगमे–आलिया की एक बांदी को अपना दिल दे बैठे। बांदी को बेगम बनने में भला क्या एतराज होता मगर; बेगमे आलिया को बहुत बुरा लगा। उन्होंने उस बाँदी को अपने बादशाह बेटे की खिदमत में न जाने दिया। इश्कोहुस्न की नैया के खेवैया पिया जाने आलम बहुत तड़फे। माँ से कहा कि तुम्हें अपने बेटे का भी ख़्याल नहीं। उस के बिना हमारी जान पे बन आयी है। माँ ने दुलार दे कर समझाया कि तुम्हारी भलाई के लिए

ही उसे नहीं दे रही। वह मनहूस है, उस की पीठ पर रोओं की साँपिन है।

हुस्न के सौदागर पिया जाने आलम ने यह सुनते ही फौरन अपना सौदा वापस ले लिया। जान है तो जहान है। यों ही उनके जी को सैकड़ों जंजाल लगे थे। अपनी दया विचारते–विचारते पिया जाने आलम ने सोचा कि मेरे हरम में साल के तीन सौ पैंसठ दिनों से कुछ ही कम औरतें हैं, इन में से कइयों की पीठ पर वह मनहूस सांपिन हो सकती है। मेरी मुसीबतों का सबब भी वहीं हो सकती हैं। बस, यह ख्याल आते ही अवध के कन्हैया ने ख्वाजा बशीरुद्दौला को यह हुक्म फरमाया कि बेगमे आलिया और खास महल को छोड़ कर बाकी सब गोपियों की तलाशी ली जाए और मनहूस औरतें छाँट कर निकाली जायें। बेगमों पर कहर टूट पड़ा। मनहूस साबित हो कर कोई भी बेगम बादशाह की नंज़रों से नहीं गिरना चाहती थी। सिफ़ारिशों, खुशामदों और रिश्वतों का बाज़ार गर्म हुआ। बशीरुद्दौला मालामाल हो गया। फिर भी आठ मनहूस सांपिनों वाली बेगमें छाँट निकाली गयीं। निशात महल, हजरत महल, सुलेमान महल, खुर्शीद महल, शैदा बेगम, हजरत बेगम, छोटी बेगम, बड़ी बेगम—इन आठों को तलाक दिया गया। अपने पूरे साज–सामान के साथ ये आठों कैसरबाग के महलों से निकल कर चौलखी में रहने चली गयीं।

सोने का साँप

बाकी बेगमों के मन में भय समाया कि बशीरुद्दौला भेड़िए के मुँह में खून लग चुका है, वह आगे भी कुछ न कुछ उत्पात करेगा। सब ने मिल कर बादशाह को समझाया कि हिन्दू पंडितों के पास हर तरह की मनहूसियत दूर करने के जंतर–मंतर होते हैं। बादशाह तलाक देकर कोई खुश थोड़े ही हुये थे, फौरन पंडितों को बुला कर उपाय पूछा। पुरश्चरण हुआ, सोने का साँप आग से दागा गया और आठों का अशुभ दूर कर दिया गया। निकाली गई बेगमों को फिर से महलों में बुलाया गया। बड़ी–छोटी दो बेगमें तो लौट कर आईं, बाकी छह बाहर ही रहीं।

इस घटना के बाद नामालूम लड़की उर्फ महकपरी उर्फ इफ़्तिखारुन्निसा बेगम उर्फ नवाब हजरत महल साहबा का जिक्रेखैर फिर गदर के जमाने में चिनहट की लड़ाई के बाद ही होता है, जब कि वह सरकारे बिरजीसी की सरपरस्त बनीं। नवाब वाजिद अली शाह के लिखे या उन की दूसरी बेगमों के लिखे हुए ख़त तो बहुत मिलते हैं मगर, इनमें हजरत और हजरत महल की आपसी ख़तोकिताबत का एक भी सबूत आज नहीं मिलता। हो सकता है कि गदर के बाद वाले ज़माने में हजरत जाने आलम की मुलायम और मासूम जान को अंग्रेजों की बला से बचाये रखने के लिए वे चिट्ठी–पत्रियां चुन–चुन कर चूल्हे के हवाले कर दी गयी हों। खैर!

जोरू का भाई, सिर पर बाजार

नवाब वाजिद अली शाह सन् १८४७ से १८५६ तक अवध के हिज मैजिस्टी रहे। इस बीच में सरकारी इन्तजाम दिनोदिन बद से बदतर होता चला गया। शहर में बाँकों का राज था। उनके हलके बँधे हुए थे। हर दुकानदार, साहूकार, इज्जत आबरूदार आदमी हाथ जोड़ कर उन्हें अपनी हैसियत के हिसाब से रुपया देने को मजबूर था। शहर की बहुत सी तवायफों के बेगम बन जाने से उन के सफरदे भाई–बिरादर, सब राजा के साले हो गये थे। सारी खुदाई एक तरफ, जोरू का भाई एक तरफ। इन तमाम शाही जोरुओं के भाइयों ने शहर को सिर पर उठा रखा था। अवध के अधिकतर सामन्त उस वक्त एक तरह से लुटेरों के गिरोह बना कर छोटे निर्बल जमीदारों की जमीन–जायदाद हड़पा करते थे। इन बड़े सामन्तों से कभीं–कभी बांके सरदारों की झड़पें भी हो जाया करती थीं। आज का लुटेरा कल राजा बन जाता था। सरकारी जेलें तोड़ कर अपने साथियों को छुड़ा ले जाता था। सरकारे अवध के वजीर तक को सरेआम दिन–दहाड़े बग्घी से खींच कर उनकी छाती पर खंजर रख कर ब्लैकमेल किया जा सकता था और फौज–पुलिस में कहीं चिड़ी–चूँ तक न बोलती थी। न किसी की इज्जत–आबरू, न धन–दौलत, न सुन्दर लड़के–लड़कियां—–लखनऊ और अवध में कुछ भी महफूज नहीं था। अवध के कन्हैया कैसरबाग में रास रचाया

करते थे, उन्हें इन सब बातों में कोई दिलचस्पी अब न रह गयी थी। १७ अगस्त, सन् १८५३ के अंक में आगरा के एक हिन्दी साप्ताहिक 'बुद्धिप्रकाश' ने लखनऊ के समाचार इस तरह से छापे हैं :-

"पहले महीने के पिछले दिनों में अवध के बादशाह ने बड़ी जिवनार की। नगर के निवासियों को केवल इसीलिये बुलाया था कि श्रीयुत बादशाह सलामत कहते हैं कि आज देखें, लोग जोगिए भेष में कैसे दृष्टि आते हैं। सो आज्ञा हुई कि जितने सेवक इस दरबार के हैं, सब गेरुए वस्त्र पहन कर आयें। उस के अनुसार लोग वही भेष बना कर इकट्ठे हुये और यह जमाव परस्तान बाग में हुआ। तीन दिवस तक खाना-पान, नाच-रंग होता रहा और प्रत्येक दिन एक लक्ष मनुष्य से अधिक इकट्ठे होते थे। क्यों न हो, राजाओं के योग्य यही बातें हैं। आशय यह कि जब यह धूमधाम हो चुकी, साहब, रेजीडेंट बहादुर असिस्टैंट साहब को साथ ले बादशाही दरबार में सिधारे। निश्चय होता है कि इस मूर्खता के विषय में कुछ कहने गये होंगे।"

और इस के बाद का हाल तो खुद हजरत जाने आलम ही अपनी आप-बीती 'हुज़्ने अख़्तर' में लिख गये हैं :

"कि जब दस बरस सल्तनत को हुये
जो नाले थे बेदार सोने लगे।
हुआ हुक्मे जनरल गवर्नरिया पास,
करो सल्तनत को खला एक बार।
जो ये मुल्क़ में बैठते सेह करोड़,
उसी की ये थी बादशाही, ये ज़ोर।
जफ़ाकश का शाहे अवध जाने है,
हुकूमत का आख़िर ये अंजाम है।
जो वह लाट डिल्हौजी उस वक्त थे,
मज़ामीन उन्होंने यह ख़तमे लिखे।
रिआया बहुत तुमसे नाराज़ है,
तुम्हारी रियासत ही बदनाम है।

रिआया न देखेंगे हर्गिज़ तबाह,
फ़खत नाम के तुम रहो बादशाह।
महीना हर एक माह एक लाख का,
मिलेगा तुम्हें कुछ नहीं शक ज़रा।
रेजिडेंट जनरल ऑट्रम जो थे,
गवर्नर का ख़त मुझको वह दे गये।
हुआ घर में कोहराम सुन कर यह बात,
व दिन–दोपहर हो गयी काली रात।"

शोहदों का हंगामा अंग्रेजों की बाढ़

११ फरवरी, सन् १८५६ को अवध पर कम्पनी सरकार का अमल हो गया। नवाबी सरकार के बड़े–बड़े हाकिम अमले–नौकरी से निकाल दिये गये। नवाबी दरबार उजड़ा तो महाजनों–दुकानदारों के धंधे भी उजड़े। इन सबकी छातियों पर साँप लोटने लगे। शाही सेनाएँ तोड़ दी गयीं। हर मोर्चे पर शोहदों का हंगामा बढ़ गया। अंग्रेजी अमल आते ही तरह–तरह के टैक्सों की भरमार हुई। खाने–पीने की चीज़ों के भाव बढ़े। सबसे अधिक शोर अफ़ीमचियों ने मचाया क्योंकि अफ़ीम के दाम भी ऊँचे चढ़े थे। इन सब कारणों से प्रजा में अमीर और ग़रीब दोनों ही, अंग्रेजों से बेहद नफ़रत करने लगे। उन्हें यह ख़लता था कि जिन महलों में उनके बादशाह रहते थे, उनमें अब अंग्रेज हाकिम रहते हैं। क़दमरसूल नाम की एक बहुत पवित्र जगह को अंग्रेज़ों ने अपना बारूदख़ाना बना कर नापाक़ किया। चूँकि धरम का मामला था, इसलिये हिन्दू–मुसलमान, अमीर–ग़रीब; सब एक दिल होकर गोरों से चिढ़ उठे। नगर में जिधर देखो वहीं गोरे ! फौज की टुकड़ियाँ पड़ी थीं। चारों ओर एकदम आतंक छाया हुआ था। बिना मंत्री, राजा और देशी प्रजा, लोग एक–दूसरे से एकदम तने हुये बैठे थे। उन दिनों का हाल लखनऊ में छूट–जाने वाली पिया जाने आलम के हरम की बेग़मों में से एक बिरहिन शैदा बेग़म ने अपनी एक प्रेमपाती में लिख कर उन्हें मटियाबुर्ज (कलकत्ता) भेजा था, वह पाती यह है :

"तेरे फ़िराक में क्यों कर ये दर्दनाक जिये।
मरे तो मर नहीं सकते, जिये तो ख़ाक जिये।।

चर्खे नाहंज़ार मुस्तइद आज़ार है, कोई मूनिस है न गमख्वार है। ज़िन्दगी से यास (निराशा) है, जीने की किसे आस है। दिल में दर्द है, आहे सर्द है। सीना मातम सरा है, जिस्म खुश्क, जिगर हरा है। जोशे वहशत की शिद्दत है, जीने से भी बेज़ार दुनिया से नफ़रत है।

काश के दो दिल भी होते इश्क़ में।
एक रखते एक खोते इश्क़ में।।

पिया जाने आलम, जब से आप लखनऊ से सिधारे, ख्वाब हराम है। रोना–धोना मुदाम है। यहाँ शबोरोज आहोबुकाँ में गुजरती हैं, मगर दूसरी मेरी हमजिन्सें खुश–खुश इठलाती फिरती हैं। आपके बाद से फ़िरंगियों के खिलाफ़ ज़हर उगला जा रहा है। नयी–नयीं बातें सुनने में आ रही हैं। दिल को हौल है कि देखिये, फ़लक़ क्या क्या रंग दिखलाता है। घासमंडी में मौलवियों का जमाव है। सुना है एक सूफ़ी अहमदुल्ला शाह आये हुए हैं। नवाब चीनाटीन के साहबज़ादे कहलाते हैं। आगरे से आये हैं। ये भी सुना है कि उनके हज़ारहां मुरीद हैं और वो पालकी में निकलते हैं। आगे डंका बजता होता है, पीछे अज़दहाँ बड़ा होता है। वहशतेनाक ख़बरों की गर्म बाज़ारी है। सरकार सुल्ताने आलम, अब आप अपना हाल लिखिये। दिल को शाद काम कीजिये।"

कुछ दिन यहाँ अपना जलवा दिखला कर मौलवी अहमदुल्ला शाह फैजाबाद चले गये। उसके कुछ दिनों बाद ही बिठूर से नानाराव पेशवा की सवारी आयी। शहर ने बहुत पुरज़ोश और बहुत ही शानदार तरीके से नानाराव का स्वागत किया। सर्राफे वालों ने लाखों के जेवरों से फाटक सजा कर उनकी अगवानी की थी। संयोग की बात है––जिस दिन नाना पेशवा का स्वागत हुआ था, उसी दिन अवध के चीफ़ कमिश्नर सर हेनरी लॉरेंस, जब बग्घी पर सैर को निकले, तब किसी ने ताक़ कर उनके मुँह पर कीचड़–मिट्टी का लोंदा फेंक मारा था।

भुस की आग

इस घटना से कुछ दिन पहले अड़तालीसवीं देसी पलटन के एक अंग्रेज डॉक्टर ने खुद अपनी तबीयत ख़राब होने पर दवाखाने की एक शीशी को मुंह से लगा कर एक खुराक दवा पी ली और शीशी फिर वहीं रख दी। सेना में यह ख़बर फैली कि अंग्रेज अपनी जूठी दवाएँ पिला कर हमारा धरम लेना चाहते हैं। रात डॉक्टर का बंगला फूँक दिया गया। इसके बाद ज़ोरदार अफ़वाह फैली कि आटे में हड्डियों का चूरा मिलाया जा रहा है। फिर मूसाबाग में ७वीं इर्रेगुलर पलटन ने चरबीहे कारतूस लेने से इनकार कर दिया। गरमा–गरमी बढ़ गई। छावनी से सर हेनरी लॉरेंस १५०० सवार और तोपख़ाना लेकर पहुंच गये। ७वीं अवध इर्रेगुलर पलटन की परेड करवायी गयी और ज्यों ही सिपाहियों के सामने तोपें लाकर उनमें पलीते लगाये गये, त्यों ही सिपाहियों में भगदड़ पड़ गई। पकड़ा–धकड़ी हुई। भारतीय जवान दबोच–दबोच कर मारे गये। लक्ष्मण टीले पर फाँसियाँ पड़ने लगीं। लाशें दिन भर लटकी रहतीं और गिद्ध और कौए उन्हें नोच–नोच कर खाते रहते। बस फिर तो हालत दिनों–दिन बिगड़ने लगी। अंग्रेज यह समझ गये कि इस बार की बिगड़ी जल्द न सुधर पायेगी और कुछ न कुछ गज़ब हो के रहेगा। ३० मई, सन् १८५७ की रात को ६ बजे तोप दगते ही मड़ियाँव छावनी में गदर मच गया और फिर तो भुस की आग के समान सारे अवध में उस की लपटें फैल गयीं। सीतापुर, मुहम्मदी, सेकरौरा, औरंगाबाद, गोंडा, बहराइच, मल्लापुर, फैजाबाद, सुलतानपुर, सलौन, बेगमगंज, दरियाबाद सभी जगहों पर अंग्रेज हाकिमों की औरतों और बच्चों को भारी संकट का सामना करना पड़ा। अवध अंग्रेजों के चंगुल से छूट गया। २८ जून का दिन अंग्रेजों के लिए भयानक दिन था। उस दिन उन्नाव–डौंडियाखेड़ा के राव रामबख़्श के आदमियों ने गंगा की रेत में फंसी अंग्रेजों की नाव का एक–एक आदमी बीन–बीन कर मार डाला। उसी दिन नवाबगंज–बाराबंकी में कई जगह की विद्रोही सेनाओं का संगम हुआ। २६ जून को ये सेनाएं लखनऊ से छह–सात मील दूर चिनहट में आ कर जम गयीं। मलीहाबाद के अफरीदी लड़ाकू भी उन लोगों से आ मिले। उन से टक्कर लेने के सिवा सर

हेनरी लारेंस के पास अब और कोई चारा न था लेकिन; अंग्रेजों के सितारे उस दिन डूबे हुए थे। जनरल बरकत अहमद की कुशल कमान में देशी फौजों ने गोरों के धुर्रे उड़ा दिये। सूबेदार शहाबुद्दीन और सूबेदार घमंडीसिंह की टुकड़ियाँ भी खूब बहादुरी से लड़ीं। देखते ही देखते सारे नगर में देशी फौजें छा गयीं। जनता जोश में बावली हो गयीं। ४ जुलाई को सर हेनरी लारेंस मारा गया मगर; नगर के भीतर रेजिडेंसी उर्फ बेलीगारद में अंग्रेज अब भी जमे हुए थे। उस के लिए भारी जंग जारी थी।

बिरजीस क़दर की ताजपोशी

एक तरफ तो यह बहादुरी दिखलायी जा रही थी और दूसरी तरफ शाही सेना से निकाले हुए तिलंगे शोहदों की तरह शहर लूटने पर तुले हुए थे। जिस–तिस रईस के यहां पहुंच जाते और कहते कि तुम्हारे यहाँ दुश्मन छिपे हैं, हम तलाशी लेंगे। उन्होंने मुहसिनुद्दौला शरफुद्दौला, अमीनुद्दौला आदि बड़े–बड़े औले–दौलों का सामान लूटा और उनसे चीं बुलवायी। बिना नेता की बहकी भीड़ ने अपनी लूट–पाट और दंगाई–गुंडई से शहर को पागलखाना बना डाला। तब मौलवी अहमदउल्ला शाह उर्फ मौलवी डंकाशाह आये और जगह–जगह अपने पहरे बिठला कर गुंडों का जोर कम किया। इधर जनरल बरकत अहमद वगैरह राज–काज को ठीक तरह से चलाने के लिए शाही वंश के किसी आदमी को गद्दी पर बिठलाने का जतन–जुगाड़ करने लगे। राजा जयलाल सिंह नुसरतजंग बुलवाए गए, सलाह–सूत हुई। बरकत अहमद, जयलाल सिंह, उमराव सिंह, जयपाल सिंह, घमंडीसिंह, शहाबुद्दीन वगैरह मुखियों की पंचायत जुड़ी। तय हुआ कि पहले शहर को एक प्रबन्ध के अधीन लाना ज़रूरी है। मौलवी डंकाशाह से कहा गया कि आप अपने चौकी–पहरे उठा लें। कुछ हीलोहुज्जत के बाद इस काम में सफलता मिली। अब गद्दीनशीनी के लिए मंसूरिया राजवंश के लोगों को पटाया जाने लगा। मिर्ज़ा दार–उस–सितवत, मिर्जा नौशेरवाँक़दर ने अंग्रेज़ों के डर से इनकार कर दिया। तब यह तय हुआ कि वाजिद अली शाह के चौथे बेटे बिरजीस क़दर को गद्दी पर बिठलाया जाये। शैदा बेगम ने अपने कलकतिया पिया जाने आलम को फिर खत लिखा :

".........यहां नये–नये गुल खिलाये जा रहे हैं। हजरत महल; आप की महबूबा, सरकार से जोड़–तोड़ कर के बागियों की सरदार बनी हैं। नवाब मुहम्मद अली खाँ के बहकाने में आ गयी हैं। शोरापुश्ती दिखा रही हैं। देखिए, किस करवट ऊँट बैठे। वो खुश होवें कि जिन को ताकते परवाज़ है।"

सरफराज बेगम ने लिखा : सब बेगमात जमा हुईं। बाज ने कहा कि वाजिद अली शाह के होते हुए किसी को बादशाह न बनाओ, यह शगुनेबद है। बाज बोलीं कि सुल्ताने आलम का बेटा उन के सामने तख़्त पर बैठ रहा है और बाप को तख़्तोताज दिलाने का सामान कर रहा है। हजरत महल ने सब से हाथ जोड़ कर कहा, ये लड़का तुम्हारा है। जैसा तुम मुनासिब ख़्याल करो, वैसा करो। नवाब खुर्द महल ने अजराह फरासत कहा कि अगर हम तुम्हारे राजीनामे पर मुहर कर दें और कलकत्ते में अंग्रेज नवाब वाजिद अली शाह को मार डालें तो क्या हो? तब राजा रुख़सत हो के चला गया। हजरत महल मायूस हुईं मगर; महमूद खाँ के तिल–तलवों को लगी हुई थी। उन्होंने हजरत महल से फौज के सरदारों को खत लिखवा दिए।

चाँदी वाली बारहदरी में ग्यारह साल के बच्चे बिरजीस क़दर की ताजपोशी हुई। फौजियों ने यह करार करवाया कि बिरजीस क़दर खुद मुख़्तार ताजदार नहीं, बल्कि देहली के शहंशाह के अधीन रहेंगे। दूसरा करार यह हुआ कि सिपाहियों को अब से दूनी तनख़्वाह मिले और बिना फौजी पंचायत की सलाह लिये सरकार कोई नयी सेना भरती न करे। यही नहीं बल्कि; राजकाज में भी पंचायत से सलाह–मशविरा किया जाए। बेगम हजरत महल बेगमे–आलिया बनीं। शरफुद्दौला, राजा बालकिशन, राजा जयलाल सिंह, मम्मू खां, हिसामुद्दौला वगैरह आला हाकिम बने। यह भी तय हुआ कि १३ नयी पलटनें भरती की जायें। रात में तख़्तनशीनी की खुशी में महफिल हुई, तवायफ ने ग़जल गायी––

"गैरते महताब है बिरजिस कदर।
गौहरे नायाब है बिरजिस क़दर।।"

गमोंफ़िक्र की घनघोर घटाओं के बीच ये खुशी की बिजलियाँ

चमकीं तो सही, पर राजमाता हज़रत महल के लिए अभी चारों ओर अँधेरा ही अँधेरा था। चारों ओर फूट, सबके दिलों में एक ओर जहाँ यह निश्चय था कि अंग्रेजों को निकाल बाहर किया जाय, वहाँ ही आपसी नइत्तेफ़ाकियों से उस एकदिली में दरारें भी पड़ी हुई थीं। कोई किसी को अपने से बड़ा मानने को तैयार न था। मौलवी अहमदुल्ला शाह बहादुर थे, वतनपरस्त भी थे, मगर अपनी डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग ही पकाते थे। बेगम हज़रत महल उनसे मिलीं; बात कुछ बनी और कुछ न भी बनी। बेलीगारद पर हमले होते थे, पर नाकाम हो जाते थे। महलों में भी आपसी जलन और तू–तू, मैं–मैं का बाज़ार गर्म था।

एक दिन कई बेग़मात मिल कर हज़रत महल के पास आयीं और कहा कि तुम अच्छी तरह रहो। तुम्हारा बेटा बादशाह हुआ, मुबारक हो, मगर हम सब बेवारिस हुए जाते हैं। जो बेलीगारद में तबाही मची तो तुम्हीं इंसाफ करो कि बादशाह और मेहरात वगैरह जो कलकत्ते में हैं, जिंदा बचेंगे या सब फाँसी दे दिये जायेंगे। इसलिए ऐसी सल्तनत को तुम चूल्हे में डालो।

इस तरह राजमाता अपने बेटे और अपने आपको चारों ओर से घिरा हुआ पाती थीं।

एकनामालूम लड़की की कूवत

लखनऊ की यह दशा देख कर अच्छे–भले मर्दों के हौसले भी पस्त हो रहे थे लेकिन; एक नामालूम लड़की, उर्फ़ जनेखानगी उर्फ़ महक़परी उर्फ़ इफ्तिखारुन्निसा बेगम उर्फ़ मनहूस सांपिन वाली हज़रत महल उर्फ़ जनाब बेगमे आलिया तनिक भी पस्त हिम्मत न हुई। 'अपने इकलौते लाड़ले को हर आँच से बचाऊँगी लेकिन; क्यूँकर बचाऊँ। यहाँ हर तरफ़ सौतिया डाह की लपटें उठ रही हैं। शिया–सुन्नियों का मसला फाँसी की मुनादी बन कर लटक रहा है। बाग़ी फौज अभी तक बेलीगारद पर कब्ज़ा नहीं कर पायी है। इसी बीच में अगर कहीं से गोरी फ़ौजें आ गयीं तो क्या होगा ! शाही ख़ज़ाने में झंझी कौड़ी नहीं, आगे खर्च क्यों कर चलेगा।'

राजमाता का मन चिन्ताओं के अथाह–समुन्दर में बेपनाह मथ

रहा था, कहीं कूल–किनारा नज़र नहीं आ रहा था, पर बेगमे आलिया हिम्मत हारने वाली औरत न थीं। उन्होंने अवध का दौरा करके सभी छोटे–बड़े जमींदारों की शक्ति संगठित करने की बात सोची।

इस में एक अड़चन थी। ग़दर से तीन बरस पहले अमेठी के मौलवी अमीर अली ने अयोध्या की हनुमानगढ़ी को लेकर जेहाद का बवण्डर खड़ा किया था, जिससे कि तमाम हिन्दू राजे अयोध्या की रक्षा के लिए चढ़ दौड़े थे। बेटे की सुरक्षा के लिए माँ की ममता से भरा मन जब कारगर हुआ तब निजी, सियासी या धार्मिक आदि छोटी–छोटी बातों की सीमाओं से उठ कर बड़े–बड़े मसलों पर ध्यान देने लगा – यह सवाल मेरे–तेरे राज का नहीं, हिन्दू–मुसलमान का नहीं बल्कि; सारे मुल्क का है। अंग्रेज हिन्दुस्तानियों के दुश्मन हैं; सिर्फ़ हिन्दू या मुसलमान के नहीं। मैं राना बेनी माधो से मिलूँगी, राजा देवी बख्श, राव राम बख्श, सारे अवध के रजवाड़ों को अपने साथ लूँगी। सब की मदद से अपने और हिन्दुस्तान के दुश्मनों को धूल चटा दूँगी।........ कहाँ का पर्दा और कैसी शर्म। मैं बादशाह की माँ हूँ, अपनी रिआया की माँ हूँ।

२६–२७ बरस की बेगमे–आलिया हजरत महल के सारे निकम्मे संकोचों के बन्धन एक झटके में टूट गये। बेगमे–आलिया ने सचमुच अवध के तूफानी दौरे किये। सारे अवध में अंग्रेजों के खिलाफ ज्वाला भड़का दी। चारों ओर से सेना ही सेना लखनऊ आने लगी। गोंडा के राजा देवीबख्श सिंह ३००० सैनिक ले कर आये; गोसाईगंज के जमींदार और ताल्लुकदार, आनन्दी और खुशहाल ४००० रण–बाँकुरे ले कर आ गये; सेमरौता—–चंदापुर के राजा शिवदर्शन सिंह १०,००० सैनिकों के साथ और वहाँ के जमींदार रामबख्श २००० लड़वैये और ३ तोपें लाये; अमेठी–सुलतानपुर के राजा लालमाधो सिंह ४ तोपें, २०० घुड़सवार और ५००० पैदल सेना सहित आये; बैसवारा के राना बेनीमाधोबख्श सिंह ५ तोपों और ५००० सैनिकों सहित आये; राजा नानपारा के कारिन्दा कल्लूखाँ १०,००० सैनिकों के साथ, खजूरगांव के राणा रघुनाथ सिंह ४ तोपों और २००० सैनिकों के साथ, संडीला के चौधरी हश्मतअली ४००० सैनिकों के साथ तथा रसूलाबाद के

चौधरी मीर मन्सबअली १००० सैनिकों के साथ आये। इनके अलावा रोइया, कटियारी, राजपुर, तरौल, कालाकांकर आदि काफी जगहों से सिपाही आये। लड़वैयों की चाल से धरती धमक उठी, पर बेलीगारद के मुठ्ठी भर गोरे न हारे। ८७ दिन के घेरे और बेगम हज़रतमहल की इतनी दौड़–धूप के बावजूद रेजिडेंसी पर यूनियन जैक शान से फ़हराता रहा।

तूफ़ानी समुद्र में सल्तनत की झंझरी, नाव लेकर वह बढ़ रही थीं और धोखे–धड़ी और बेवफाइयों के बड़े–बड़े मच्छ–तिमिंगिल उसे टक्करें दे रहे थे। बेगम फिर भी हिम्मत न हारीं। दूसरों को हौसला दे–दे कर आपसी मनमुटावों को मिटा कर हज़रत महल ने मीर फिदा हुसैन कप्तान, मुहम्मद हुसैन नाजिम, अब्दुल हादी खाँ, कुमैदान मुहम्मद मिर्जा जैसे लोगों को आज़ादी की लड़ाई में हिस्सा लेने के लिए आगे बढ़ाया।

लेकिन; तक़दीर रूठी रही

यह सब होने पर भी रेजिडेंसी जीती न जा सकी। कानपुर की तरफ़ से जनरल हैवलॉक और जनरल ऑटरम की सेनाएं लखनऊ जीतने के लिए आगे बढ़ीं। हजरत महल ने जनानी–मर्दानी जासूस टोलियों का बड़ा उम्दा जाल बिछा रखा था। पल–पल पर अंग्रेजों के आगे बढ़ने की ख़बरें आ रही थीं। यह भी ख़बर लगी कि शाही तिलंगे शहर की नाकेबन्दी छोड़–छोड़ कर भाग रहे हैं। बेगमे आलिया ने राजा जयलाल सिंह को नाकेबन्दी का हुक्म दिया। २३ सितम्बर को अंग्रेज एकदम सिर पर आ पहुँचे। शहर में घबराहट फैल गय़ी। बेगम ने शहर भर में इश्तहार चिपकवा दिये कि ये अंग्रेज हमारे औरत–मर्द, बच्चे किसी को जीता न छोड़ेंगे। वे सबको ईसाई बना देंगे। दिल्ली–मेरठ वगैरह जगहों में उन्होंने यही किया है। हिन्दुस्तानियों ! दुश्मन को तबाह करने में सब एकजुट रहो !

तिलंगों को तनख़्वाह नही मिली थी। एक तो शाही ख़जाने में रुपयों की कमीं शुरू ही से थी, दूसरे जो रुपया आता था, उसमें से काफी रक़म बड़े–बड़े हाकि़मों के खीसों में पहुँच जाती थी और किस–किस को कहा जाये, खास बेग़म–आलिया के बड़े चहेते बड़े भरोसे के आदमी मम्मू खाँ तक इस बेईमानी से बाज न आये। इन्हीं

सब बातों से तो हम हारे। जब तिलंगों को गर्माते देखा, तब बेग़म ने मम्मू खां और हिसामुद्दौला को समझाने के लिए भेजा। शर्माहुजूरी के लिए वे गये तो सही, पर तिलंगों की गालियां खाकर उन से भागते ही बना। जब बेग़म ने यह देखा, तब शहर में आप दौड़–धूप करने निकलीं। भटवामऊ के तजम्मुल हुसैन खाँ, नबी बख़्श खाँ और काजिम हुसैन खाँ – तीनों भाई दस्तरख्वान पर बैठे थे। बेगम पहुँचीं और कहा कि "इम्तहाने–सर–फरोशी का वक्त आ पहुँचा है और तुम लोग घर में बैठे हो। क्या जब गोरे मेरे झोटे नोचेंगे, तब जाओगे?" तीनों भाई दस्तरख़्वान छोड़ कर उठ खड़े हुये। अयोध्या के राजा मान सिंह नौ हजार सिपाही लेकर लड़ने आ गये।

आलमबाग में भीड़ अथाह थी। जनता और सिपाही सब अपने बचाव के लिए एकजुट हो गये थे। पानी जोरों से बरस रहा था। दोनों ओर से तोपों की करारी मार हो रही थी। काले–गोरे सिपाही आपस में कटाजुझ्झ मचाये हुये थे। बेग़म के मन को चैन नहीं। एक–एक सरदार के घर जा–जा कर उसे लड़ने के लिये उकसाया। यहीं तक नहीं, बकौल जार्ज बिकर्स बेग़म ने खुद मरदाने वेश में हाथी पर बैठ कर तिलंगों के आगे–आगे फिरंगियों से मुकाबला किया। लखनऊ से सरफराज बेग़म ने मटियाबुर्ज को, नवाब अख़्तर महल को लिखा––"मैं नहीं समझती थी कि हज़रत महल ऐसी आफत की परकाला है। खुद हाथी पर बैठ कर तिलंगों के आगे–आगे फिरंगियों से मुकाबला करती है। आंख का पानी ढल गया है और इस को हिरास मुतलक नहीं है।.........."

बहरहाल अंग्रेज जीत गये। रेजिडेंसी में पहुँच गये। बेग़म तब भी न हारीं। उनके जोशीले दौरों और अवध के रण–बांकुरों की राष्ट्रीय–भावना ने चारों ओर से सिमट कर राजधानी में शक्ति की जोत जगाए रखी। तमाम घरेलू कमजोरियों के रहते हुए भी यह हज़रत महल ही का दम था, जो मार्च सन् १८५८ तक लखनऊ पर अंग्रेजों का अधिकार न हो सका। परन्तु १८ मार्च को बेग़म और २१ मार्च को मौलवी अहमदउल्ला शाह अंग्रेजों से हार गये। बेगम के बारे में रसल ने लिखा है : "वह अपने बादशाह पति से बेहतर मर्द थी।" बेग़म ने शहर की औरतों तक को सिपाही बना दिया था।

लखनऊ की इंच–इंच धरती के लिए जम कर युद्ध हुआ, पर करम गति टारे नाहिं टरी।

लखनऊ छोड़ने के बाद भी बेग़म ने अवध न छोड़ा। रैकवार क्षत्रियों के मुखिया राजा हरदत्त की रियासत बौंडी में बैठ कर उन्होंने फिर दूने जोश के साथ अपने संगठन का काम शुरू किया।

बेनीराम मिश्र लिखित जंगनामे के मुताबिक–––

"बहिरायच और बाइसी, बैस्वारे के राज।
आए सजि–सजि सैन सब, बादसाहि के काज।।
श्री हरदत्त की बौंडी तहं, है बेगमवास।
हुकुम पाय आए सबै, बादसाहि के पास।।

लड़त–लड़त अंगरेज सों,
हटी हज़ूरी फौज।
छूटि गयो गढ़ लखनऊ,
मिटी मान की मौज।।
सो अब ऐसी कीजिए,
दीजिए थान्ह कराय।
हुकुम हमारो मानि कै,
सोई करो उपाय।।

उपाय किए भी गये। मोर्चे डट कर लिए गये। बेग़म के जोश ने भारतीय इतिहास को एक नया वीर अभिमन्यु दिया। चहलारी का १८ बरस का ठाकुर बलभद्र सिंह अपने सात सौ जवानों के साथ नवाबगंज बाराबंकी की लड़ाई में ऐसा लड़ा कि दुश्मनों तक को तारीफ़ करनी पड़ी। राजा बेनीमाधो, देवीबख्श, कहाँ तक गिनायें, एक–एक वीर ने यह साबित कर दिया कि अपनी मिसाल वह आप ही हैं। फिर भी देश की हार होती ही रही। मुठ्ठी–भर अंग्रेजों से हम जीत न सके। जहाँ तक व्यक्तिगत शूर–वीरता की बात है, हमारे पुरखों में एक–से–एक बेमिसाल बहादुर हुये हैं। हम गदर की बात ही नहीं कहते बल्कि; सिकन्दर के ज़माने से, महाराज पुरु से लेकर पृथ्वीराज चौहान, राणा सांगा, महाराणा प्रताप, गुरू गोविन्द सिंह, छत्रपति शिवाजी, लक्ष्मीबाई, तात्या टोपे, नाना पेशवा, बाबू कुँअर

सिंह, अवध के मरदाना राना, बलभद्र सिंह चहलारी तक, एक–से–एक बहादुरों ने कमाल के जौहर दिखलाये, पर बहादुर पैदा होते रहे और देश गुलाम होता गया।

यह सोच कर दिल घुमड़ता है। इन सब वीरों की बहादुरी का आदर करते हुये भी यह सवाल तो उठता ही है कि ऐसी बहादुरी से आखिर हम को लाभ ही क्या हो सकता है? जब तक हम एकजुट हो कर कोई काम करना नहीं सीखते, तब तक हमारी उन्नति हो ही नहीं सकती। हमारे बहादुरों ने अपना सब कुछ गवाँ कर भी आखिर देश का क्या भला किया ! आज भी हमारे यहाँ वीरों और बुद्धिमानों की कमी नहीं है, पर देश कुल मिला कर फिलहाल रसातल की ओर ही जाता हुआ नज़र आ रहा है। ऐसा लगता है कि दस हजार हाथियों के बल वाला भीम गहरे दलदल में धँस गया है और जितना ही वह बचाव के लिए अपने व्यक्तिगत शौर्य का इस्तेमाल करता है, उतना ही वह और गहरा धँसता जाता है। यह तस्वीर बड़ी घुटन भरी और भयानक है। न जाने किस जमाने में और किन ऐतिहासिक वजहों से हमारे देश का यह अति पर पहुँचने वाला आत्मघाती व्यक्तिवादी दर्शन पनपा ! वैदिक–भारत का 'समानी मंत्रः समितिः समानी' वाला आदर्श खो कर हमने अपने आप को बहादुर हो कर भी दुर्बल, बुद्धिमान होकर भी मूर्ख और परमार्थी होकर भी परम–स्वार्थी बना लिया। हम अपने छोटे–छोटे दायरों वाले 'निज' में इस तरह से धँस गए हैं कि अपने व्यापक निजत्व को पहचानने की काँटा तोल बुद्धि ही खो बैठे हैं। वीर–पूजा, नायक–पूजा हम अब भी बड़े जोर–शोर से करते हैं पर; उस पूजा के भीतर तक कुछ नहीं होता। यह सच है कि हमारा दर्शन हमारे व्यक्तियों को किसी ऊँचे सिद्धान्त के लिए हँसते–हँसते शहीद हो जाना सिखला कर भी हमें समाज के रूप में सही तौर से संगठित नहीं कर सका। हमारे व्यक्तियों की शानदार शहादत बीती सदियों से लेकर अब तक बराबर बेकार जा रही है। किसी देश का इस से बड़ा दुर्भाग्य भला और क्या हो सकता है। खैर ! बेग़म की संगठन–शक्ति और अपनी राष्ट्र–भक्ति के सहारे राना बेनी माधो और गदर के अभिमन्यु चहलारी के वीर बलभद्र के परवानों के साथ हमारे लोक–कवियों ने फूटपरस्त गद्दारों का

कलंक भी खूब–खूब बखाना है। बेनीराम मिश्र के जंगनामे में हमारी कायरता (जो फूटपरस्ती का स्वाभाविक दुर्गुण है) का भी बड़ा सटीक जिक्र किया गया है––

काऊ ना मुहीम लीन्ह्यो तोसो करिके,
दगा फौज भागी है सुवार की।
पलटनें तिलंगन की थोरी–सी लड़त भई,
गोरन को देखि तोप दगी ना गंवार की।
रह्यो ना सिहार कछू मरदमी भुलाय गई,
करिकै नामरदी से न चली पार–वार की।
ऐसे समय महाराज वीर बलभद्र सिंह,
नाम राख्यो उत्तर और नाक रैकवार की।

–२–

देखि कै फिरंगिन की सेल बम्ब
जंगिन को,
भागिगे तिलंगा सब वन की
गली लई।
चंदापुर, रघुनाथ, लालमाधो,
हिन्दपाल,
चारिउ निगोड़न ने मिलि के
दगा दई।।
वीर शिवरत्नसिंह लैके समसेर हाथ,
जुझिगो समर बीच कीरति भली
लई।।
भाषैं कवि 'श्यामलाल' नाक कटी
वीरन की,
वीरता अकेले साथ राना के चली
गई।।

इस फूटपरस्त देश में जो वीर अन्त तक बेगम के साथ रहे उनमें राणा बेनीमाधो, नाना पेशवा, राजा देवीबख्श, मुहम्मद हुसैन नाजिम आदि अनेक हिन्दू–मुसलमान थे। बहराम घाट पर हारने के

बाद ये लोग जब नेपाल भागे, तब इन के साथ कई हजार सिपाही थे। सब से अचरज की बात है कि जिन चर्बीहे कारतूसों पर ग़दर मचा था, उनका इस्तेमाल भी अंग्रेजों से लड़ते समय किया गया और वे सिपाही भी इन लोगों के साथ ही नेपाल गये। नेपाल से हो कर कलकत्ता पर चढ़ाई का विचार था। लेकिन नेपाल में इन्हें अलग–अलग खदेड़ा गया। बेगमे आलिया दो–तीन दिन तुलसीपुर की अचवा गढ़ी में रहीं, फिर सोनार पर्वत हो कर नये कोट चली गयीं। वहाँ आसफुद्दौला की बनवायी हुई बारहदरी में टिकीं। उनके वहाँ पहुँचने से पहले ही नेपाल के राजा जंगबहादुर की चिट्ठी लेकर कप्तान निरंजन माँझी पहुँच गए थे। उन्हें धमकाया गया कि अगर समझौता नहीं करोगी, तो इधर से हम मारेंगे और उधर से अंग्रेज तुम्हें पीटेंगे। तुम्हारा रसद–पानी तक रुकवा दिया जायगा। रसद–पानी सचमुच रुकवा भी दिया गया। बेगम असहाय हो कर हार गयीं। समझौता कर लिया। यहाँ तक लिख कर दे दिया कि मेरे लड़के का कोई अपराध नहीं। वह सिपाहियों के चंगुल में फँस गया था। मेरा और मेरे बेटे का अंग्रेजों से बैर नहीं है।

जो माँ बेटे की राज–रक्षा के मोह से उठ कर अवध की शक्ति बनी थी, वह फिर उसी के मोह में कायर बन गई ! हाँ, उस ने इतना ज़रूर किया कि अंग्रेज सरकार की पेंशन लेने के बजाय नेपाल सरकार की पाँच सौ रुपये की मासिक पेंशन क़बूल करके काठमांडू में ही बैठ रही। सन् १८७४ में वहीं उनका देहान्त भी हुआ।

हज़रतमहल को ऐसी ज़िन्दगी मिली थी जो शुरू से अख़ीर तक विपद भरे कटु अनुभवों ही की कहानी बनी रही, पर उस विष के भीतर से उन्होंने अपनी शख़्सियत में जीवन–सौन्दर्य भी जिस तरह से उभारा, उसकी सराहना सदा की जायेगी।

□□□



अमृतलाल नागर

आगरा में १७ अगस्त, १६१६ को एक गुजराती परिवार में जन्मे नागरजी की लेखनी १३ वर्ष की उम्र में ही चल पड़ी थी। उनकी पहली कहानी 'प्रायश्चित' मात्र १५ वर्ष की उम्र लिखी गई। पढ़ाई हाईस्कूल तक की परन्तु धुन के धनी नागरजी ने अपनी विलक्षण प्रतिभा के बल पर हिन्दी के साथ–साथ बंगला, गुजराती, मराठी तथा अंग्रेजी भाषाओं का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। साहित्य के गंभीर अध्ययन के साथ–साथ समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, इतिहास व पुरातत्व आदि विषयों में इनकी गहरी पैठ थी। बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी इस कुशल साहित्यकार की लेखनी कहानी, उपन्यास, नाटक, रेखाचित्र, संस्मरण, रिपोर्ताज, व्यंग्य रचनाओं आदि के क्षेत्र में अप्रतिम थी और इनसे सम्बन्धित वह अनेक कालजयी कृतियाँ हिन्दी जगत को दे गए हैं।

एक सुप्रसिद्ध कथाकार, उपन्यासकार, कहानीकार, नाटककार और संस्मरण विधा के विशेषज्ञ के रूप में तो नागरजी आने वाली पीढ़ियों को याद रहेंगे ही, एक सहज, निष्कपट व सहृदय व्यक्ति के रूप में भी वह हमेशा अनुकरणीय रहेंगे। व्यक्तित्व और कृतित्व का यह सामंजस्य उनके सिद्धांतों पर चलने वाले साहित्य सेवियों और पाठकों को निरंतर प्रेरणा देता रहेगा। सरस्वती के वरद्–पुत्र नागरजी का निधन २३ फरवरी, १६६० को हुआ।

प्रमुख कृतियाँ : खंजन नयन, मानस का हंस, बूँद और समुद्र, पीढ़ियाँ, अमृत और विष, सात घूँघट वाला मुखड़ा, एकदा नैमिषारण्ये, सुहाग के नुपूर आदि।

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ

साहित्य सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	मूल्य
कबीर	डॉ० विश्वनाथ प्रसाद तिवारी	४०.००
भुवनेश्वरः व्यक्तित्व एवं कृतित्व	सम्पा० राजकुमार शर्मा	६०.००
सुब्रह्मण्य भारती	सम्पा० डॉ० एन० सुन्दरम	१६५.००
साहित्य मनीषी आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	डॉ० रामचन्द्र तिवारी	६०.००
भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का जीवन चरित्र	राधा कृष्ण दास	४८.००
राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन	सम्पा श्री कमलापति मिश्र	१२५.००
हरिश्चन्द्र	बाबू शिवनन्दन सहाय	१००.००
बंशीधर शुक्ल रचनावली	सम्पा० डॉ० श्यामसुन्दर मधुप	३७८.००
आचार्य किशोरीदास वाजपेई	सम्पा० डॉ० मंजु लता तिवारी	२००.००
गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही'	सम्पा० डॉ० लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक'	१६५.००
गोस्वामी तुलसीदास	डॉ० रामचन्द्र तिवारी	५०.००
रामचंद्र शुक्ल	सम्पा० प्रो० सत्यदेव मिश्र	१५.००
राष्ट्रकवि सोहन लाल द्विवेदी	डॉ० राष्ट्रबन्धु	४०.००
चंदवरदाई	डॉ० सुमन राजे	५०.००
कविवर सुमित्रानन्दन पंत	डॉ० सुरेश चन्द्र गुप्त	५२.००
कथाकार यशपाल	डॉ० मनमोहन सहगल	७०.००
सुभद्रा कुमारी चौहान	डॉ० प्रतीक मिश्र	५५.००
भगवती चरण वर्मा : एक व्यक्तित्व-चित्र	ज्ञान चन्द्र जैन	७०.००
अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'	डॉ० कन्हैया सिंह	४३.००
मैथिलीशरण गुप्त	डॉ० प्रभाकर शुक्ल	५०.००
आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी	डॉ० रामेन्द्र पाण्डेय	५०.००
सेनापति	डॉ० अनन्त राम मिश्र 'अनन्त'	७५.००
गुरु नानक देव	डॉ० मनमोहन सहगल	६०.००

सम्पर्क सूत्र

निदेशक

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान

राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन हिन्दी भवन

६, महात्मा गांधी मार्ग, लखनऊ - २२६००१

ISBN : 978-93-82175-38-4

मूल्य ₹ ४०=००